

DC-1

विषय- राजनीतिक विज्ञान.

प्रश्न पत्र : 3 - भारत में राष्ट्रवाद.

प्रथमवर्ष : सेमेस्टर- 2

लेखक- प्रकाश कुमार पटेल (शोधार्थी राजनितिक विज्ञानं विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय )

अध्याय- ५ : "विभाजन और स्वतंत्रता"

विषय- भारत में ब्रिटिश शासन के दौरान साम्प्रदायिकता का उदय और विकास



## विषय सूची:-

- परिचय
- भारत में 1857 से पहले की धार्मिक-सामाजिक स्थिति
- साम्प्रदायिकता का अर्थ और आधार

भारत में साम्प्रदायिकता के उदय के कारण -

- आर्थिक कारण
- शैक्षणिक कारण
- राजनीति उद्देश्यों के लिए धर्म का उपयोग करना
- ब्रिटिश सरकार की बाटों और राज करों की नीति
- ब्रिटिश सरकार द्वारा बंगाल-विभाजन और पृथक निर्वाचन की व्यवस्था
- हिन्दू-पुनरुत्थानवादी दलों और व्यक्तियों की भूमिका

भारत में साम्प्रदायिकता का विकास -

- 1857 के क्रांति से लेकर 1905 के बंगाल विभाजन तक
- 1905 के बंगाल विभाजन से लेकर नेहरू रिपोर्ट तक
  1. बंगाल का विभाजन और सांप्रदायिक तनाव
  2. मुस्लिम लीग का उदय और इसका प्रभाव
  3. 1909 का मार्ले मिंटो अधिनियम द्वारा सांप्रदायिक निर्वाचन की व्यवस्था
  4. लखनऊ समझौता
  5. असहयोग आन्दोलन और उसके बाद की सांप्रदायिक स्थिति
  6. नेहरू रिपोर्ट और उसका राजनितिक प्रभाव
- 1929 के नेहरू रिपोर्ट से लेकर देश के विभाजन तक
  1. 1939 का चुनाव और साम्प्रदायिकता का प्रश्न
  2. द्वितीय विश्वयुद्ध की शुरुआत और दो-राष्ट्र का सिद्धांत
  3. मुस्लिम लीग का लाहौर प्रस्ताव और पाकिस्तान की अवधारणा को मंजूरी

4. राजगोपालचारी फार्मूला और कांग्रेस-लीग समझौते का आखिरी प्रयास

5. 1946 का चुनाव और सांप्रदायिक विभाजन

- निष्कर्ष :-



## अध्याय - ५

### भारत में ब्रिटिश शासन के दौरान साम्प्रदायिकता का उदय और विकास



Source: <http://www.google.co.in/imgres>

(भारत शुरू से ही सभी धर्मों का केंद्र रहा है)

भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद का मुख्य उद्देश्य अन्य यूरोपीय औपनिवेशिक देशों की तरह आर्थिक लाभ कमाना था. लेकिन इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने न केवल भारत की राजनीतिक सत्ता पर अपना वर्चस्व कायम किया बल्कि इसके साथ-साथ उन्होंने भारतीय सामाजिक व धार्मिक संरचना में इस तरह परिवर्तन किए जिससे उनकी साम्राज्यवादी सत्ता को मजबूती मिले तथा उसे वैधता की प्राप्ति हो. अपने सामाजिक-आर्थिक नीतियों के माध्यम से हालाँकि उन्होंने अपने तत्कालीन साम्राज्यवादी उद्देश्यों की प्राप्ति में सफलता पाई लेकिन उसका दुष्प्रभाव भारतीय समाज पड़ा जिससे सदियों से चली आ रही विविधता में एकता की भारतीय परम्परा छिन्न-भिन्न हो गयी और भारतीय समाज में साम्प्रदायिकता का उदय हुआ ब्रिटिश उपनिवेशवाद के कारण भारत की जो आर्थिक और राजनीतिक क्षति हुई थी, उसकी प्राप्ति स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद बहुत हद तक कर लिया गया लेकिन ब्रिटिश साम्राज्यवादी नीति के कारण भारतीय समाज में जिस साम्प्रदायिकता के जहर का विकास हुआ उसने बहुधार्मिक भारतीय समाज के धार्मिक बहुलता व सहिष्णुता को तहसनहस कर दिया और उसकी परिणति धार्मिक आधार पर देश के दर्दनाक विभाजन के रूप में सामने आई.

❖ 1857 की क्रांति के पहले भारत में सामाजिक-धार्मिक स्थिति:-



Source: <http://www.google.co.in/imgres>

भारतीय समाज सदा से सांस्कृतिक, धार्मिक व भाषाई रूप से विविधताओं से पूर्ण समाज रहा है लेकिन ये विविधताएँ कभी भी सामाजिक-धार्मिक तनाव का कारण नहीं होकर धार्मिक व सांस्कृतिक बहुलता और सहिष्णुता पर आधारित रहीं हैं. भारत में हिन्दू बहुमत के बीच मुस्लिम, सिख, इसाई, पारसी इत्यादि अनेक अल्पसंख्यक भी रहते हैं, इसके बावजूद यहाँ विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के बीच एक विशेष प्रकार की सभ्यता पर आधारित सांस्कृतिक एकता का भाव पाया जाता है. इस प्रकार भारतीय समाज धार्मिक और सांस्कृतिक दोनों दृष्टिकोण से सहनशील और सार्वभौमिक दृष्टि वाला रहा है. भारतीय समाज हमेशा धार्मिक और सांस्कृतिक अलगाववाद का विरोधी रहा तथा हमेशा सभ्यताओं के गतिशील संवाद में विश्वास रखता रहा है. जैसा कि **जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है** : " भारत का पूरा इतिहास सहनशीलता, अल्पसंख्यकों को प्रोत्साहन और विभिन्न जातीय समूहों के समावेश का रहा है. भारतीय इतिहास में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसकी तुलना यूरोप में हुए विभिन्न धार्मिक संघर्षों और विवादों से की जा सके. इसलिए हमें धर्म और संस्कृति की सहनशीलता सिखाने के लिए विदेश जाने की जरूरत नहीं है, क्योंकि ये मूल्य तो हमारे जीवन दर्शन में ही शामिल हैं." धार्मिक पहचान के अलावे यहाँ भाषाई, नस्लीय, जातीय पहचान भी व्यक्ति के व्यवहार को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करते हैं और यही कारण है कि जहाँ एक ही धर्म के लोगों के बीच भाषा, रीति-रिवाज, जाति व नस्ल के आधार पर भिन्नता पाई जाती है, वही भिन्न धर्मों के लोगों के मध्य भी क्षेत्रीय, भाषाई व अन्य परम्पराओं के आधार पर काफी समानता पाई जाती है. भारतीय समाज के धार्मिक बहुलता व सहिष्णुता का अंदाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि हिन्दू बहुसंख्या के मध्य भी यहाँ अनेक मुस्लिम शासक हुए और उनमें से अधिकतर को प्रत्येक धार्मिक समूहों का विश्वास प्राप्त हुआ लेकिन उन्होंने भी सभी जनता के साथ बिना किसी भेदभाव के एक सामान व्यवहार किया. **जवाहर लाल नेहरू के शब्दों में** : "भारतीय संस्कृति का एक मुख्य लक्षण यह रहा है कि यह सहनशीलता और समझदारी का वातावरण बनती है, धर्म के मामलों में आजादखयाली की जगह जियो और जीने दो की नीति इसका अंग है." वास्तव में यही सहनशीलता और उदारता, जो लोगों को अपना चुना हुआ जीवन जीने की आज़ादी देती है भारत के लोगों की सबसे बड़ी उपलब्धि है. भारतीय संस्कृति की यही पहचान अशोक के शिलालेखों और अकबर के दीन-ए-इलाही की व्यवस्था में भी नज़र आती है जहाँ सभी पंथ एक दुसरे के आदर के अधिकारी हैं. इस प्रकार सामाजिक और सांस्कृतिक समागमों से मिलकर बनी हमारी संस्कृति भारतीय सभ्यता के विकास का मूल तत्व है. गुरु नानक, कबीर, बाबा

फरीद, नरसी मेहता और तुलसीदास जैसे मध्यकालीन धार्मिक और सामाजिक सुधारकों का एक गुण यह था की वे इस सांस्कृतिक संश्लिष्टता के समर्थक थे और उसका प्रचार भी करते थे. इस सामाजिक सांस्कृतिक समागम और मिलीजुली बहुलवादी संस्कृति का विकास सिर्फ अभिजात और जटिल संस्कृति वाले उच्च वर्ग तक ही सीमित नहीं रहा बल्कि वैचारिक समागम की धाराएँ और जीने के तरीकों का चुनाव आम लोगों में ज्यादा सशक्त था और वह उनके दैनिक जीवन में दिखाई भी पड़ता है.

भारत शुरू से ही गावों का देश रहा है. तथा भारतीय गावों का सामाजिक तानाबाना धार्मिक और सांस्कृतिक विभेदों से काफी दूर रहा है, वहां सदा से सभी धर्मों यथा- हिन्दू, मुस्लिम, सिख और ईसाईयों के बीच हमेशा से घनिष्ठ सामाजिक रिश्ते रहे हैं. धर्म सामाजिक सम्बन्धों में कभी भी रुकावट नहीं बनती थी. मुस्लिम और हिन्दुओं को एक दुसरे की लोक गाथाएं और धार्मिक विश्वास अच्छी तरह पता थे और संस्कृति और जीवन के एक जैसे तरीके ही कुल मिलाकर सामने आते थे. हिन्दू, मुस्लिम, सिख और ईसाई एक साझा सामाजिक आर्थिक ढांचे में रहते थे और उनके आपसी सम्बन्धों, रीति-रिवाजों और सांस्कृतिक तौर-तरीकों का एक पूरा सिलसिला था, और वे एक जैसा कम करते थे, एक जैसा जीवन जीते थे, एक जैसी भाषा बोलते थे, एक जैसे कपड़े पहनते थे और उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक रीतियाँ भी एक जैसी थी. वे एक दुसरे के सुख-दुःख और उत्सवों में शामिल होते थे और एक दुसरे के रीति-रिवाजों का आदर करते थे और उनके पालन में मदद भी करते थे. इसप्रकार भारत के हृदय स्थल गांवों में धार्मिक और सांस्कृतिक सदभाव का एक अनोखा संतुलन था.

जब ब्रिटिश सत्ता भारत में अपनी पैर जमाने के लिए प्रयासरत थी तो उस समय उसे एक संयुक्त हिन्दू-मुस्लिम शासकों के प्रतिरोध का सामना करना पड़ा था. 1764 में जब बक्सर के चौसा के मैदान में अंग्रेजों के खिलाफ निर्णायक लड़ाई लड़ी जा रही थी, वहां तीन मुस्लिम शासकों की संयुक्त सेना एक साथ अंग्रेजों से मोर्चा ले रही थी लेकिन उन सेनाओं के सेनापति और सैनिक ज्यादातर हिन्दू थे. उसके बाद से ही उत्तर से लेकर दक्षिण और पूर्व से लेकर पश्चिमी जहाँ-जहाँ अंग्रेजों ने अपनी सत्ता का विस्तार करने का प्रयास किया वहां-वहां उन्हें संयुक्त हिन्दू मुस्लिम प्रतिरोध का सामना करना पड़ा हालाँकि इसी दौरान कई भारतीय शासकों ने अपने निजी स्वार्थ और आपसी प्रतिस्पर्धा के कारण एक दुसरे के खिलाफ अंग्रेजों का साथ भी दिया जिससे वे भारत में अपना पैर जमाने में सफल रहे, लेकिन इसके बावजूद भारतीय समाज में आम जनता के मध्य एक व्यापक धार्मिक एकता बनी रही. लेकिन उपरोक्त धार्मिक एकता ब्रिटिश औपनिवेशिक नीतियों के अनुकूल नहीं थी तथा यह एकता ब्रिटिश साम्राज्यवादी सत्ता को एक संगठित भारतीय चुनौती प्रस्तुत करती थी इसका उकृष्ट उदहारण अंग्रेजों को 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में देखने को मिला जब हिन्दू-मुस्लिम संगठित एकता ने भारत में मजबूत ब्रिटिश सत्ता की जड़ हिला दी और हिन्दू बहुल विद्रोही सैनिकों ने बहादुरशाह जफर को भारत का शासन घोषित कर धार्मिक एकता का एक अतुलनीय उदहारण पेश किया. अतः इस धार्मिक एकता को अपनी सत्ता के लिए चुनौती मानते हुए ब्रिटिश शासकों ने यहाँ धार्मिक आधार पर समाज का विभाजन की कोशिश शुरू कर दी जिसका स्वाभाविक परिणाम भारतीय समाज में साम्प्रदायिकता के उदय के रूप में हुआ.

### ❖ साम्प्रदायिकता का अर्थ और आधार:-





Source: <http://www.google.co.in/imgres>

(अंग्रेजों के फूट-डालों और शासन करो की नीति के कारण देश के कई भागों में धार्मिक दंगे भड़क उठे)

साम्प्रदायिकता एक ऐसी सोच है जिसके तहत किसी एक धर्म को मानने वाला व्यक्ति अपने धर्म को अन्य सभी धर्मों से सर्वोच्च मानता है तथा दूसरे धर्म के सही शिक्षा को भी ग्रहण करने से इंकार करता है. यह एक ऐसी विचारधारा है, जो धार्मिक पहचान पर बहुत ज्यादा बल देती है तथा और सभी पहचानों यथा- सामाजिक, सांस्कृतिक, भाषाई और राजनीतिक पहचान को धार्मिक पहचान के सामने निराधार बना देती है. यह अवधारणा क्षेत्रीय व सांस्कृतिक नजदीकियों और अंतर:धार्मिक भाईचारे की भावना को गौण मानते हुए एक धर्म को मानने वाले लोगों के बीच धार्मिक भाईचारे को उभारने का प्रयास करती है, जिसकी प्रकृति सामान्यतः अन्य धर्म को मानने वाले लोगों के खिलाफ होती है. इसप्रकार साम्प्रदायिकता की भावना एक बहुलतावादी समाज में विभिन्न धार्मिक समूहों के मध्य होने वाले परस्पर संवाद की प्रक्रिया को हतोत्साहित करती है जिसके कारण किसी समाज में बहुलतावादी और सहिष्णुतावादी प्रवृत्तियों का पतन होने के साथसाथ धार्मिक आधार पर लोगों का धुवीकरण होता है, जो कभी-कभी धार्मिक तनाव का भी रूप ले लेता है. यह एक प्रकार के अतार्किक सोच का परिचायक है क्योंकि जो लोग सदियों से एक साथ, एक संस्कृति में रहते आये हैं उनकी चिंतन प्रक्रिया और जीवन शैली कमोवेश सामान होगी भले ही वे किसी भी धर्म को मानते हों. उदाहारण के लिए बंगाल के एक मुस्लिम और एक हिन्दू में ज्यादा समानता होगी बजाय कि बंगाल के एक हिन्दू और कश्मीर के एक हिन्दू में. क्योंकि मात्र एक धार्मिक समानता को हटा दिया जाये तो कश्मीरी हिन्दू और बंगाली हिन्दू और कुछ भी समानता नहीं मिलेगी जबकि बंगाली हिन्दू और बंगाली मुस्लिम के मध्य एक मात्र धर्म को हटा दिया जाये तो अन्य सभी मानकों में वे सामान होंगे. साम्प्रदायिकता ऐसा विश्वास करती है कि विभिन्न धर्मों को मानने वाले लोगों के राजनीतिक व आर्थिक हित एक दुसरे से भिन्न होते हैं भले ही वे एक ही क्षेत्र व स्थिति विशेष में रहते हों. इस सोच के अनुसार विभिन्न धार्मिक आस्थाओं को मानने वाले लोग एक साथ, एक देश या राज्य में नहीं रह सकते बल्कि उनको उचित राजनीतिक और आर्थिक अधिकार सही मायनों में तभी प्राप्त हो सकते हैं जब प्रत्येक धार्मिक वर्ग के लिए अलग राज्य का निर्माण किया जाये. इस प्रकार राजनीतिक रूप से साम्प्रदायिकता की भावना अलगाववाद पर बल देती है.

जिसप्रकार राष्ट्रवाद का विकृत रूप फासिस्टवाद की ओर ले जाता है उसी प्रकार सम्प्रदायवाद धार्मिक समूहों के मध्य तनावों से होते हुए अलगाववाद तक पहुंचता है भारत में साम्प्रदायिकता पिछले १०० सालों की ऐतिहासिक

प्रक्रिया की झूठी चेतना की प्रतीक थी. **पंडित जवाहर लाल नेहरु के अनुसार** " किसी को यह नही भूलना चाहिए कि साम्प्रदायिकता एक ऐसी प्रक्रिया है जो हमारी आँखों के सामने विकसित हुई है"

**विपिन चन्द्र के अनुसार**, साम्प्रदायिकता के तीन मूल आधार होते हैं:-

प्रथम, यह धारणा कि सामान धर्म वाले लोगों के गैर-धार्मिक हितों, यथा- आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि भी सांझे होते हैं.

दूसरा, भारत जैसे बहुधार्मिक समाज में किसी एक धर्म विशेष के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं राजनितिक हित दूसरे धर्म के अनुयायियों से पृथक एवं भिन्न होते हैं.

तीसरा, साम्प्रदायिकता अपने चरम सीमा पर तब पहुँचती है जब विभिन्न धर्मों के हितों को परस्पर विरोधी, विद्वेषी, शत्रुतापूर्ण तथा प्रतिकूल माना जाता है.

इसप्रकार साम्प्रदायिकता के विकास में हम तीन अवस्थाओं का वर्णन कर सकते हैं. पहली अवस्था थोड़ी नरम होती है जहाँ सामान धर्म वाले लोगों के भौतिक हित भी सामान होते हैं, दूसरी अवस्था थोड़ी संतुलित होती है, जिसमें विभिन्न धर्मों के लोगों के हित असमान, किन्तु सामंजस्यकारी होते हैं. लेकिन तीसरी अवस्था उग्रवादी होती है, जिसमें विभिन्न धर्मों के अनुयायियों के हित विरोधाभासी होते हैं, और एक दुसरे के प्रति घृणा तथा दर पैदा करते हैं

#### ❖ भारत में साम्प्रदायिकता के उदय के कारण:-



भावना पनपी)

(हिन्दू साम्प्रदायिकता के कारण भारत के अल्पसंख्यकों में अलगाव की

Source: <http://www.google.co.in/imgres>

किसी भी विविधतापूर्ण समाज में साहचर्य और भाईचारे के लिए यह अत्यंत आवश्यक तत्व है कि वहाँ रहने वाले लोगों के बीच एक दुसरे के प्रति विश्वास और विरोधी विचारों के प्रति सहिष्णुता का भाव हो. जहाँ समाज में रहने



वाले लोगों के मध्य परस्पर विश्वास और संवाद की प्रक्रिया सामाजिक समायोजन लाती है जिससे सामाजिक एकता की भावना को मजबूती मिलती है, वही राजनीतिक रूप से विरोधी विचारों के प्रति सहिष्णुता से राष्ट्रीय एकता की भावना को मजबूती मिलती है। भारत का सामाजिक और राजनीतिक इतिहास विभिन्न समूहों के बीच परस्पर विश्वास और सहयोग पर आधारित रही है और यहाँ विरोधी विचारों के प्रति केवल सहिष्णुता का ही भाव नहीं रहा है बल्कि उसके प्रति आदर का भी भाव रहा है। यूरोपीय संस्कृति और भारतीय संस्कृति में मूलभूत अंतर यही है कि जहाँ यूरोपीय संस्कृति में तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक धारा के विपरीत जाने पर बड़े-से बड़े विचारकों एवं वैज्ञानिकों को दण्डित किया गया, जैसे महान राजनीतिक चिन्तक सुकरात और महान वैज्ञानिक गैलेलियो को सिर्फ इस लिए दण्डित किया गया क्योंकि उनके विचार तत्कालीन राजनीतिक और धार्मिक परम्परा के विपरीत थे, वही भारतीय संस्कृति में सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक असहमति रखने वाले चिंतकों व सुधारकों के प्रति न केवल सहिष्णुता का भाव रखा गया बल्कि उनको यहाँ आदर भी प्रदान किया गया है। गौतम बुद्ध ने हिन्दू धर्म की कुरृतियों से तंग आकर बौद्ध धर्म की स्थापना की लेकिन हमारे समाज ने उनका बहिष्कार नहीं किया बल्कि उन्हें महात्मा की उपाधि से विभूषित किया। उसी प्रकार धार्मिक प्रवृत्ति वाले इस देश में चार्वाक ने सभी धर्मों को नकारते हुए भौतिकता का नारा दिया लेकिन उस चार्वाक को भी आज महात्मा चार्वाक कहा जाता है।

लेकिन उपरोक्त सामाजिक-धार्मिक सहिष्णुता और सामंजस्यता होने के बावजूद भी भारत जैसे देश में साम्प्रदायिकता जैसे तत्व का उदय क्यों हुआ और किन कारणों ने इंधन का कार्य किया यह एक विचारणीय पहलु है। साम्प्रदायिकता का सम्बन्ध जैसे तो धार्मिक आधार पर अलगाववाद और कट्टरता से है, लेकिन इसे उभारने में धार्मिक कारकों के साथ-साथ अन्य कारकों की भी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। खासकर भारत जैसे देश में अंग्रेजी उपनिवेशवाद के आने के बाद जैसे-जैसे लोगों में राजनीतिक, आर्थिक चेतना का उदय होना शुरू हुआ वैसे-वैसे धार्मिक पहचान का जुड़ाव राजनीतिक और आर्थिक मामलों से होने लगा और लोगों ने एक धार्मिक समूह के रूप में अपने राजनीतिक और आर्थिक स्थिति की तुलना अन्य धार्मिक समूहों के राजनीतिक और आर्थिक स्थिति से करने लगे। इस तुलनात्मक प्रक्रिया में जब उन्हें लगा कि उनके धार्मिक समूह की राजनीतिक व आर्थिक साधनों तक पहुँच अन्य समूहों की अपेक्षा कम है तो वही से धार्मिक अलगाववाद और साम्प्रदायिकता की भावना ने जन्म लेना शुरू कर दिया। विभिन्न विद्वानों ने साम्प्रदायिकता का अध्ययन कई पक्षों के सन्दर्भ में किया है जैसे ' संस्कृतियों के टकराव तथा शक्ति वितरण से उत्पन्न होने वाले विवादों के रूप में', या ' हिन्दू तथा मुसलमानों की राजनीतिक शत्रुता की जड़े धार्मिक शत्रुता में', या भारतीय उपमहाद्वीप में फैले आला दर्जे के संकीर्णवाद या हिन्दू और मुस्लिम स्वार्थी हितों के संघर्ष के उपरी आवरण के रूप में। लेकिन भारत में साम्प्रदायिकता का उभार ब्रिटिश उपनिवेशवाद के उदय के बाद की परिघटना है।

भारत में साम्प्रदायिकता के उदय के निम्नलिखित कारण रहे हैं-

#### ➤ आर्थिक कारक:-

भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद की स्थापना के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था में इसप्रकार के परिवर्तन हुए जिससे यहाँ के परम्परागत आर्थिक सम्बन्ध तहस-नहस हो गये और भारतीय समाज में विभिन्न वर्गों के बीच एक प्रकार की आनुपातिक निर्धनता की स्थिति पैदा हो गयी। अंग्रेजों द्वारा भारत के आर्थिक शोषण और यहाँ के परम्परागत

सामाजिक ढांचा में असंतुलित परिवर्तन से जहाँ एक तरफ यहाँ आर्थिक ठहराव की स्थिति पैदा हो गयी और भारत के मध्य वर्ग पर इसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ा जिसने समाज में विभाजन तथा विरोधाभासी परिस्थितियाँ पैदा करने में सहायता की। भारत में साम्प्रदायिकता का मुद्दा मूलतः मध्यवर्गीय मुद्दा था। इसका सामाजिक आधार और अपील भी मध्यवर्गीय थी। यह दो उच्च वर्गों में शक्ति, विशेषाधिकार तथा आर्थिक लाभों के लिए संघर्ष की स्थिति थी। यह मुख्यतः औपनिवेशिक शासन के दुष्परिणाम स्वरूप उत्पन्न हुए आर्थिक और भौतिक हितों के लिए संघर्ष का प्रसार था जिसने धार्मिक शत्रुता को राजनितिक शत्रुता में बदल दिया। ब्रिटिश सरकार द्वारा शुरू की गयी नयी आर्थिक व्यवस्था हिन्दू व्यापारियों एवं मध्यम वर्ग के लिए अनुकूल थी जिसका उन्होंने भरपूर लाभ उठाया वहीं मुस्लिम मध्यम और उच्च वर्ग अपने सामंतवादी व कुलीनतंत्रीय जीवन शैली के कारण इस नए आर्थिक परिवर्तन की प्रक्रिया में पिछड़ गये। हिन्दुओं ने ब्रिटिश सरकार द्वारा शुरू किये गये व्यापारिक, शैक्षणिक परिवर्तन के अनुरूप अपने आप को ढाल लिया जिसके कारण ब्रिटिश भारत में पैदा हुए रोजगार के अनुरूप उनमें योग्यताओं का विकास हुआ और उन्हें बहुत आर्थिक लाभ प्राप्त हुआ जबकि अपने परम्परागत सामाजिक-धार्मिक संरचना के कारण मुस्लिम समाज उसके अनुरूप अपने आप को ढाल नहीं पाया और आर्थिक परिवर्तन के इस दौर में मुस्लिम उच्च वर्ग अपने हिन्दू समकक्षों से बहुत पिछड़ गए। परिवर्तित अर्थव्यवस्था पर इसप्रकार हिन्दुओं का कब्ज़ा हो गया और व्यापारियों, महाजनों तथा वित्तीय पूंजी निवेशकों का एक नया वर्ग पैदा हो गया इसका परिणाम यह हुआ की अचल संपत्ति का स्थानांतरण मुस्लिम हाथों से निकलकर गैर मुस्लिम महाजनों के हाथ में जाने लगी। इसका परिणाम यह हुआ की एक तरफ जहाँ हिन्दू मध्य वर्ग अपने व्यापारिक और शैक्षणिक योग्यता के बल पर आर्थिक रूप से बढ़ता गया वहीं मुस्लिम उच्च वर्ग इस बदलती आर्थिक परिवर्तन की प्रक्रिया में पिछड़ता गया। इसी आनुपातिक आर्थिक स्थिति जिसमें हिन्दू उच्च वर्ग की स्थिति मुसलमानों से काफी मजबूत हो गयी, ने अंततः भारत में दोनों समुदायों के मध्य अंतर को बढ़ा दिया जिससे साम्प्रदायिकता को बढ़ावा मिला।

**आर.पी. दत्त लिखते हैं कि " सांप्रदायिक विरोधाभास की पृष्ठभूमि के पीछे सामाजिक और आर्थिक मुद्दे होते हैं नौकरियों तथा पदों की होड़ में लगे मध्यवर्गीय साम्राज्यवादियों के सन्दर्भ में यह सुस्पष्ट है."**

### ➤ **शैक्षणिक कारण:-**

भारत में अंग्रेजी सरकार ने अपने औपनिवेशिक हितों के अनुरूप शिक्षा की एक नयी पद्धति शुरू की जिसके अनुसार उन्होंने अंग्रेजी भाषा को प्रोत्साहित करने की नीति अपनाई तथा यूरोपीय पद्धति पर आधारित शिक्षण की प्रक्रिया शुरू की। अंग्रेजों द्वारा परंपरागत भारतीय शिक्षा पद्धति में परिवर्तन के दोहरे कारण थे। एक तरफ वे ब्रिटिश शिक्षा पद्धति के प्रसार द्वारा भारत में अंग्रेजी चिंतन व सभ्यता का प्रसार करना चाहते थे ताकि अपने साम्राज्यवादी शासन के औचित्य को सिद्ध किया जा सके, वहीं दूसरी तरफ वे भारत में एक ऐसे वर्ग को पैदा करना चाहते थे जो नस्ल में तो भारतीय हो लेकिन सोच और विचार में ब्रिटिश हो तथा जो ब्रिटिश भारतीय शासन में कर्मचारी वर्ग की भूमिका निभा सके। ब्रिटिश शिक्षा पद्धति का उद्देश्य धार्मिक भी था क्योंकि ब्रिटिश मिशनरी शिक्षा के माध्यम से भारत में ईसाइयत का प्रसार करना चाहते थे। जहाँ हिन्दुओं ने ने बड़ी संख्या में इस शिक्षा पद्धति को अपनाकर अंग्रेजी तथा पच्छिमी शिक्षा प्राप्त करने में उत्साह दिखाया, वहीं मुस्लिम धार्मिक गुरुओं ने मुसलमानों के अंग्रेजी

शिक्षा को अपनाने पर रोक लगा दिया. इसका परिणाम यह हुआ कि जहाँ हिन्दू इस नयी शिक्षा पद्धति में ढलकर सरकारी नौकरियों और अन्य आर्थिक स्थितियों में काबिज हो गये और वे सांस्कृतिक रूप से अंग्रेजों के करीब हो गये, वही मुसलमानों द्वारा इस नयी शिक्षा पद्धति को नकारने के कारण प्रशासनिक पदों पर उनकी भागीदारी हिन्दुओं के अनुपात में काफी कम हो गयी और इसने दोनों समुदायों के मध्य आर्थिक और सांस्कृतिक अंतर को और चौड़ा कर दिया. मुसलमानों द्वारा ब्रिटिश शिक्षा पद्धति को ठुकराने के कारण जहाँ एक तरफ प्रशासनिक पदों पर नियुक्ति के मामले में अन्य समुदायों से वे पिछड़ गये वही दूसरी तरफ ब्रिटिश सरकार ने भी राजनितिक रूप से उनके प्रति उपेक्षा की नीति अपनाई, जिसके कारण मुस्लिम समुदाय राजनितिक निर्वासन में जीने लगा. यहाँ सवाल केवल मुस्लिमों के सामाजिक, आर्थिक, एवं शैक्षणिक विकास में कमी का नहीं था, बल्कि यह मनोवैज्ञानिक भी था. इसप्रकार नयी ब्रिटिश शिक्षा नीति के कारण जहाँ एक तरफ मुसलमानों और हिन्दुओं में आर्थिक असमानता चौड़ी हुई वही इससे मुस्लिमों में यह धारणा पनपी कि अंग्रेजों और हिन्दुओं के मध्य मुस्लिम समाज के खिलाफ भीतरी गठजोड़ है. इसने दोनों समुदायों के मध्य विश्वास की कमी पैदा हुई तथा इससे साम्प्रदायिकता के विकास में योगदान किया.

➤ **राजनीतिक उद्देश्यों के लिए धर्म का उपयोग करना:-**



(मुस्लिम लीग ने अपने राजनीतिक उद्देश्यों के लिए मुस्लिमों के भावनाओं को उभारा)

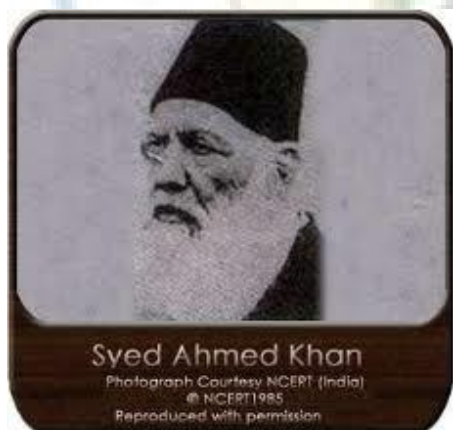
Source: <http://www.google.co.in/imgres>

गिरती हुई शैक्षणिक-आर्थिक स्थिति के परिणामस्वरूप मुस्लिम उच्च वर्गों(सामंतवादी जमींदार, सेवानिवृत्त सरकारी पदाधिकारी, व्यापारी, सूदखोर इत्यादि) जो राजनीतिक सत्ता तक अपनी पहुँच भी रखते थे, के राजनीतिक रसूख में कमी आई. अतः उन्होंने अपने गिरते राजनीतिक रसूख को बरकरार रखने के जुगत में साम्प्रदायिकता को एक राजनीतिक औजार के रूप में इस्तेमाल करने की नीति अपनाई. मुस्लिम उच्च वर्ग ने अपने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्वार्थी हितों की पूर्ति के लिए साम्प्रदायिकता को उभारने की नीति अपनाई ताकि धर्म के आधार पर मुसलमानों को एकताबद्ध कर तथा अन्य समुदाय से उनकी पृथक्ता को उभार कर मुस्लिम समुदाय को एक राजनीतिक वर्ग के रूप में परिवर्तित कर उनके नाम पर अपनी राजनीति चमकायी जा सके. इसके लिए उन्हें मुस्लिमों में वर्गीय चेतना को उभारना, तथा अन्य समुदाय से उनके संवाद की प्रक्रिया को तोड़ना आवश्यक था.

अपने इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए मुस्लिम उच्च वर्ग ने इस्लाम खतरे में है जैसे जुमलों का इस्तेमाल किया ताकि धार्मिक रूप से अति-संवेदनशील मुस्लिम समुदाय को धार्मिक अस्मिता के नाम पर गोलबंद करके राजनीतिक रूप से ब्रिटिश शासन और हिन्दू नेताओं से सौदेबाजी की जा सके. धार्मिक अस्मिता को राजनीति से जोड़ने के साथ-साथ उन्होंने राजनीतिक रूप से धार्मिक राष्ट्रवाद का नारा दिया और मुस्लिमों को यह विश्वास दिलाने की कोशिश की कि उनके पिछड़ेपन का मुख्य कारण भारत में ब्रिटिश-हिन्दू गठजोड़ है, अतः उनका आर्थिक, राजनीतिक विकास और धार्मिक अस्मिता की रक्षा तभी हो सकती है जब उनके लिए एक अलग राष्ट्र की व्यवस्था होगी. उनके इन प्रोपोगंडा को धीरे-धीरे मुस्लिम निम्न वर्ग और माध्यम वर्ग का भी सहानभूति प्राप्त होने लगी, क्योंकि बहुत चालाकी से उनके आर्थिक दयनीय स्थिति और धार्मिक अस्मिता को इस अलग राष्ट्र के विचार से जोड़ दिया गया था. इसप्रकार मुस्लिम उच्च वर्गों ने अपने राजनीतिक और वर्गीय हितों की पूर्ति के लिए आर्थिक और धार्मिक मामलों को राजनीति से मिलाकर निम्न और मध्यम वर्गीय मुस्लिमों के बीच धार्मिक अलगाववाद को पैदा किया इससे भारत में समुदायों के बीच दूरियाँ पैदा हुईं जो अंततः भारत में सांप्रदायिकता के उदय का कारण बनीं.

**प्रसिद्ध इतिहासकार ए.आर. देसाई के अनुसार " मुस्लिम समुदाय में आधुनिक बुद्धिजीवी वर्ग, आधुनिक शिक्षित वर्ग, मध्य वर्ग तथा बुजुर्ग वर्ग का विकास हिन्दू समुदाय की अपेक्षा काफी देर से हुआ जब तक उन्हें इस कमी का एहसास हुआ, सरकारी नौकरियों, व्यापार , उद्योग तथा वित्त के महत्वपूर्ण क्षेत्रों पर हिन्दू समुदाय अपने पैर मजबूती से जमा चूका था. नौकरियों तथा व्यापारिक हितों के लिए हिन्दुओं के साथ संघर्ष में उन्हें अपने समुदाय के व्यापक समर्थन की आवश्यकता थी. अतः उन्होंने समान वर्गों के विभिन्न समूहों के संघर्ष को सांप्रदायिक संघर्ष में बदल दिया अर्थात हिन्दू हिन्दू समुदाय तथा मुस्लिम समुदाय के बीच संघर्ष में बदल दिया अर्थात हिन्दू समुदाय तथा मुस्लिम समुदाय के बीच संघर्ष."**

#### ➤ ब्रिटिश सरकार की बाटों और राज्य करो की नीति:-



(सर सैयद अहमद खान ने मुस्लिमों में शिक्षा के प्रसार पर जोर दिया)

Source: <http://www.google.co.in/imgres>

जब ब्रिटिश भारत आये तो उन्होंने सबसे पहले इस बात का अध्ययन करने की कोशिश की कि कौन-कौन से कारक भारतीय समाज में एकता स्थापित करते हैं और कौन से कारक यहाँ सामाजिक-धार्मिक तनाव पैदा कर सकते हैं.



इसके लिए उन्होंने भारतीय इतिहास के पुनर्लेखन की पद्धति अपनाई. भारतीय इतिहास को साम्प्रदायिक आधार पर हिन्दू युग और मुस्लिम युग के रूप में विभाजित करते हुए मुस्लिम-हिन्दू शासकों के बीच के संघर्षों को हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष का नाम दिया गया. 1857 की क्रांति, जिसमें मुस्लिमों और हिन्दुओं ने एक साथ मिलकर ब्रिटिश शासन के खिलाफ संघर्ष किया था और बहादुरशाह जफ़र को अपना शासक घोषित किया था की असफलता के बाद जहाँ अंग्रेजी हुकूमत ने हिन्दुओं का पक्ष लेना शुरू किया वही मुसलमानों के प्रति भेदभाव की नीति अपनाई. मुस्लिमों के प्रति अंग्रेजों के भेदभाव के मुख्य कारणों में बहावी आन्दोलन और 1857 के क्रांति में मुस्लिमों की भूमिका थी. इसने अंग्रेजों के नज़र में मुस्लिमों को संदेहास्पद बना दिया. और अंग्रेजो ने मुस्लिम समुदाय के प्रति शासकीय व राजनितिक भेदभाव की नीति को अपनाते हुए उनका एकतरफा दमन करना शुरू कर दिया मुसलमान शुरू से ही एक लड़ाकू प्रजाति रही है लेकिन अंग्रेजो ने उनके खिलाफ भेदभाव की नीति को अपनाते हुए सेना की नौकरी से उन्हें निकाल बाहर करने लगे वही हिन्दुओं की सेना में भर्ती में उल्लेखनीय वृद्धि हुई. ब्रिटिश सरकार खुलकर हिन्दुओं का पक्ष लेने लगी और मुसलमानों के प्रति उपेक्षा तथा भेदभाव की नीति अपनाई. इससे मुस्लिमों में यह भावना भर गयी कि अंग्रेजो और हिन्दुओं का गठबंधन उनके धार्मिक-राजनितिक पहचान को मिटाना चाहता हैं. अतः उनमें वर्गीय एकता की भावना का संचार हुआ और अंग्रेजों के साथ-साथ उनमें हिन्दू विरोधी भावना भी उभरने लगी जिसने कालांतर में साम्प्रदायिकता का रूप ले लिया. हिन्दू समाज अंग्रेजों की इस नीति को ठीक से समझ नहीं पाया और उसके ओर से भी मुस्लिम समाज के साथ विश्वास बहाली के उपाय नहीं किये गये जिससे दोनों समुदायों के बीच अविश्वास की भावना बढ़ती गयी तथा सदियों से चली आ रही भाईचारे की भावना को गंभीर क्षति पहुंची

मुस्लिमों के प्रति अंग्रेजों की इस भेदभाव नीति को देखते हुए मुस्लिम समुदाय के कुछ विद्वानों जैसे सर सैयद अहमद खान ने अंग्रेजी हुकूमत और मुस्लिमों के मध्य 1857 के विद्रोह के बाद उत्पन्न हुए अविश्वास की दुरी को भरने का प्रयास किया तथा इस प्रक्रिया में उन्होंने मुसलमानों में अंग्रेजी साम्राज्य के प्रति निष्ठा उत्पन्न करने तथा बहुसंख्यक हिन्दुओं से दुरी बनाने को प्रोत्साहित किया. ऐसा करके असल में सर सैयद अहमद खान मुस्लिमों को अंग्रेजी सरकार में उचित हक दिलाना चाहते थे. सेना, प्रशासनिक सेवाओं में उचित भागीदारी और राजनीतिक रूप से मुसलमानों के उचित प्रतिनिधित्व के लिए यह आवश्यक था कि ब्रिटिश सरकार और मुस्लिम समुदाय के बीच मधुर सम्बन्ध हो. इसके अतिरिक्त मुस्लिमों को सरकारी नौकरी के लिए योग्य बनाने के लिए सर सैयद अहमद खान ने मुसलमानों में आधुनिक पच्छिमी शिक्षा के प्रति जागरूकता पैदा की और उन्हें अंग्रेजी तथा वैज्ञानिक शिक्षा को ग्रहण करने के लिए प्रोत्साहित किया. इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने अनेक शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की. लेकिन मुसलमानों को ब्रिटिश हुकूमत के करीब लाने की प्रक्रिया में कभी हिन्दू और मुसलमान को भारत माँ के दो नेत्र बताने वाले सर सैयद ने दोनों समुदायों को एक दुसरे से दूर भी करने की कोशिश की. हालाँकि मुस्लिम अंग्रेज गठबंधन बनाने का उनका प्रयास हिन्दू विरोधी नहीं होकर पूर्ण रूप से मुस्लिम हितों की रक्षा करना था लेकिन इस प्रक्रिया ने दोनों समाजों के बीच दरार जरूर पैदा कर दी जो आगे आने वाले समय में बढ़ती ही गयी.

जब 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के बाद भारत में राष्ट्रवादी भावना का उभार होने लगा तो अंग्रेजों ने राष्ट्रवादी ताकतों को दबाने और उनमें फूट डालने के नीयत से 1857 के बाद जारी मुस्लिमों के प्रति उपेक्षा और भेदभाव की नीति को त्यागकर उनके प्रति तुष्टिकरण की नीति अख्तियार की जिसके तहत उन्हें नौकरियों में

आरक्षण, विभिन्न सेवाओं में उन्हें प्राथमिकता और अनेक सुविधाएँ देने की नीति अपनाई. जिससे राष्ट्रवादी ताकतों जिनमें ज्यादातर हिन्दू थे, से निपटने के लिए मुस्लिम समुदाय का विश्वास अर्जित किया जा सके. इसी प्रक्रिया में सरकार ने सर सैयद अहमद खान जैसे व्यक्ति को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के बढ़ते हुए प्रभाव को काटने के लिए इस्तेमाल किया. इस प्रकार सर सैयद अहमद खान जैसा व्यक्ति जो पहले उदार चरित्र वाला तथा हिन्दू मुस्लिम एकता पर बल देने वाले व्यक्ति थे. अंग्रेजों की फूट डालो और शासन करो की नीति के प्रभाव में आकर मुस्लिमों को हिन्दुओं से दूर रहने तथा अंग्रेजों से मुस्लिमों को अपनी नजदीकियां बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित करने लगे.

### ➤ ब्रिटिश सरकार द्वारा बंगाल-विभाजन और पृथक निर्वाचन की व्यवस्था:-



(साम्प्रदायिक सदभाव के लिए मार्च करते महात्मा गाँधी)

Source: <http://www.google.co.in/imgres>

जब सर सैयद अहमद खान की अपील द्वारा मुस्लिमों को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस से अलग करने की अंग्रेजी अंग्रेजी कोशिस परवान नही चढ़ पाई और बहुत बड़ी संख्या में मुस्लिम कांग्रेस की तरफ झुकने लगे तथा बढ़ चढ़ कर राष्ट्रीय आन्दोलन में हिन्दू-मुस्लिम एक साथ भाग लेने लगे तो अंग्रेजों ने इस एकता को तोड़ने की दूसरी युक्ति अपनाई और राष्ट्रवाद के केंद्र बंगाल को पूर्वी और पश्चिमी बंगाल के रूप में दो भागों में बाँट दिया. इसके पीछे उन्होंने हालाँकि कारण प्रशासनिक बताया लेकिन उनका मुख्य उद्देश्य बंगाल में हिन्दू-मुस्लिम एकता को तोड़कर उसे क्षेत्रीय आधार पर विभाजित करना था. पूर्वी बंगाल की ज्यादातर जनसँख्या मुस्लिम थी जबकि पच्छिमी बंगाल में हिन्दुओं का बहुमत था. बंगाल विभाजन का बहुत बड़े स्तर पर विरोध हुआ और राष्ट्रवादी ताकतों ने इसे राष्ट्रीय आन्दोलन को कमजोर करने की ब्रिटिश नीति का एक भाग माना. लेकिन ब्रिटिश सरकार और ब्रिटिश गवर्नर जनरल लार्ड कर्जन मुस्लिम उच्च वर्ग को यह विश्वास दिलाने में लगभग कामयाब रहे कि बंगाल का विभाजन मुस्लिमों के हित में है. शायद इसी कारण से व्यापक रूप से मुस्लिम समुदाय बंगाल विभाजन के विरुद्ध उठी राष्ट्रवाद की मुख्य धारा के प्रति उदासीन रहा. ढाका के नवाब शालीमुल्ला की अध्यक्षता में पूर्वी बंगाल के मुसलमानों ने बंगाल विभाजन का स्वागत किया. लेकिन जब कड़े राष्ट्रीय प्रतिरोध के कारण अंग्रेजी सरकार को बंग-भंग को रद्द करना पड़ा तो उन्होंने इसको हिन्दुओं के नेतृत्व वाली कांग्रेस का दबाव करार दिया. बंगाल विभाजन पूर्वी बंगाल के प्रभावशाली मुस्लिमों के लिए एक लाभकारी तथा इससे वे वहाँ एक प्रभावशाली राजनीतिक व आर्थिक स्थिति प्राप्त कर सकते थे. अतः बंगाल विभाजन रद्द होने के कारण उनका यह सपना पुरा नही हो सका. इस कारण से बंगाल के मुस्लिमों और हिन्दुओं में तनाव की स्थिति उत्पन्न हुई और मुस्लिमों ने



इसे हिन्दू बहुमतवाद का एक उदहारण माना. इसप्रकार एक बार बंगाल का विभाजन और पुनः उसे रद्द करने की प्रक्रिया ने हिन्दू-मुस्लिमों के बीच विवाद और संदेह को बढ़ा दिया.

इसी कड़ी में राष्ट्रीय आन्दोलन से मुस्लिमों को अलग रखने तथा मुस्लिमों के लिए एक अलग राजनीतिक संगठन के निर्माण को प्रोत्साहित करने के लिए अंग्रेजों के प्रोत्साहन पर आंगा खान के नेतृत्व में एक मुस्लिम प्रतिनिधि मंडल ब्रिटिश गवर्नर जनरल लार्ड मिंटो से मिला प्रतिनिधि मंडल का उद्देश्य मुस्लिमों के लिए एक अलग राजनीतिक संगठन के निर्माण के सम्बन्ध में ब्रिटिश गवर्नर-जनरल से विचार विमर्श करना तथा भविष्य में होने वाले संवैधानिक सुधारों के सन्दर्भ में मुस्लिमों के लिए विधान मंडलों में पृथक निर्वाचन क्षेत्रों की मांग करना था. ब्रिटिश गवर्नर जनरल और मुस्लिम प्रतिनिधि मंडल के बीच हुए मुलाकात के दोनों उद्देश्य पुरे हुए जब 1907 में एक अलग मुस्लिम संगठन मुस्लिम लीग की स्थापना हुई तथा कांग्रेस को एक हिंदूवादी संगठन साबित करने की कोशिश की गयी, 1909 के मार्ले-मिंटो सुधार अधिनियम के द्वारा मुस्लिमों के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्रों की व्यवस्था करते हुए दोनों समुदायों के मध्य विभाजन की दीवार को और चौड़ा कर दिया गया. अपेक्षा के अनुरूप जब कांग्रेस ने सांप्रदायिक आधार पर किये जा रहे विभाजन का विरोध करना शुरू किया तो ब्रिटिश सरकार और नवनिर्मित मुस्लिम लीग ने मुसलमानों के मध्य कांग्रेस को हिन्दुओं के संगठन के रूप में प्रचारित करना शुरू कर दिया, अतः कांग्रेस इस सांप्रदायिक विभाजन के खिलाफ अपने संघर्ष को एक अंजाम तक नहीं पहुंचा पाई अतः 1919 के अधिनियम के द्वारा पृथक निर्वाचन की इस व्यवस्था को सभी अल्पसंख्यक वर्गों तक विस्तृत कर दिया गया. इसप्रकार अंग्रेजी सरकार के विभाजनकारी नीतियों के कारण भारत में साम्प्रदायिकता में वृद्धि हुई. अंग्रेजी सरकार द्वारा हिन्दू, मुसलमान तथा सिक्खों को पृथक समुदाय और अलग राजनितिक-सामाजिक इकाईयों के रूप में मानने, सांप्रदायिक नेताओं को सरकारी मान्यता देने, सांप्रदायिक समाचार पत्रों के साथ विशेष पक्षपात करने तथा समाचार पत्रों, साहित्य, आम सभाओं अथवा अफवाहों के माध्यम से सांप्रदायिक घृणा और जहर फैलाने वाले लोगों के विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं करने, और सांप्रदायिक मार्गों को तत्परता से मन लेने की नीति के कारण भारत में साम्प्रदायिकता के उभार में तेजी आई. इसके अतिरिक्त ब्रिटिश सरकार ने एक सोची-समझी नीति के तहत जहाँ सांप्रदायिक नेताओं को अपने समुदाय के नेता के रूप में स्वीकार किया, वही राष्ट्रीय नेताओं पर यह आरोप लगाया गया कि वे केवल 'सूक्ष्म अल्पतंत्र' का प्रतिनिधित्व करते हैं.

### ➤ हिन्दू- पुनरुत्थानवादी दलों और व्यक्तियों की भूमिका:-

19 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में भारत में उदारवादी आन्दोलन की असफलताओं और सुधारवादियों द्वारा हिन्दू समाज में सुधार की प्रक्रिया में उसमे विद्यमान कुरीतियों के आलोचना के कारण हुए हिन्दू धर्म के सम्मान में क्षति के कारण, राष्ट्रीय आन्दोलन को धार्मिक प्रतीकों से जोड़ते हुए उसे आम जनता से जोड़ने और हिन्दू धर्म के पौराणिक गौरव को उभारने के लिए कांग्रेस के नरमपंथी राजनीति के साथ-साथ एक वर्ग का उदय हुआ जिसे "हिन्दू पुनरुत्थानवाद" के नाम से जाना जाता है. चार्ल्स हाईमसैठ (1964) के अनुसार " राष्ट्रवाद और सुधारवाद परस्परविरोधी विचार लगते थे, इसके कारण हर भारतीय विशेषता में गर्व की भावना पर आधारित सुधारवाद विरोधी भावना का जन्म हुआ इसे ही अक्सर पुनरुत्थानवाद कहाँ जाता है, क्योंकि इसकी विशेषता उस शानदार हिन्दू अतीत की धारणा में आस्था थी, जिसका पतन मुस्लिम शासन के दौरान हुआ और जिसे अंग्रेजों की ओर से खतरा थी इस्लामी सभ्यता या पश्चिमी सभ्यता पर हिन्दू सभ्यता का यह महिमामंडन अक्सर हिन्दू संस्थाओं और आचार-

विचारों के गुणगान और युक्तिकरण का प्रयास बन जाता था; यहाँ तक की कभी-कभी तो तत्कालीक महत्व के समाजसुधारकों का भी मुखर विरोध किया जाता था. उन्नीसवी सदी के अंतिम वर्षों में सुधारवादी प्रवृति धीरे-धीरे कमजोड पडी और ये पुनरुत्थानवादी शक्तियां मजबूत हुई लेकिन यह पुनरुत्थानवाद मात्र पोंगापंथ नही था; इसका एक जोड़दार राजनितिक स्वर था, जो एक आधुनिक भारतीय राष्ट्र की रचना की ऐतिहासिक आवश्यकता से प्रेरित था."(शेखर, 2013 : 234)इसका स्वरुप शुरुआत में तो सामाजिक था लेकिन शीघ्र ही इसने अपने लिए एक राजनीतिक भूमिका तैयार कर ली और धार्मिक प्रतीकों,देवी-देवताओं और सांस्कृतिक- धार्मिक उत्सवों के सहारे लोगों को राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति जागरूक किया दया .भारत में धर्म कभी राजनीति से पूरी तरह अलग नही रहा, न ही वह पूरी तरह निजी जीवन तक सीमित था. लेकिन अभी तक की परम्परा यह थी कि राजनीति धर्म के नियमों के अनुसार चलेगी पर इस आन्दोलन की उभार ने राजनितिक उद्देश्यों के लिए धर्म के उपयोग की परम्परा शुरु कर दी, जिसका प्रभाव यह हुआ कि अल्पसंख्यक समुदाय अपने आप को वैसे आंदोलनों में भाग लेने में असहज महशुस करने लगा जिनमें धार्मिक प्रतीकों तथा उत्सवों का सहारा लिया जाता था. कांग्रेस के प्रमुख गरमपंथी नेता बालगंगाधर तिलक द्वारा अपने राष्ट्रवादी आन्दोलनों में धार्मिक उत्सवों व प्रतीकों यथा- गणेश पूजा, काली पूजा के प्रयोग से अल्पसंख्यकों खासकर मुस्लिम समुदाय का इसमें इनमें शामिल होना एक प्रकार से असंभव हो गया. इसीप्रकार उत्तर भारत में राजनीतिक लामबंदी के लिए रुढ़िवादी हिन्दू धार्मिक प्रतीकों के उपयोग ने आर्यसमाज और गोरक्षा आन्दोलन के कारण और भी उग्र रूप धारण कर लिया जिसके फलस्वरुप 1893 में व्यापक सांप्रदायिक हिंसा हुई गाय को हिन्दू धार्मिक और अध्यात्मिक रूप से पूज्यनीय मानते हैं अतः उसके प्रति हिंसा से वे उद्देलित हो जाते थे. लेकिन अगर भारतीय इतिहास का अध्ययन किया जाये तो पाते हैं कि भारतीय समाज में अर्थव्यवस्था जब पशुपालन से कृषि की अवस्था में पहुंची तब से गाय का महत्व हमेशा स्वीकार किया गया है. लेकिन प्राचीन काल में गौ को पवित्र या अवध्यः नही माना जाता था; गाय का सम्मान मध्य काल में बढ़ा, जब गोहत्या की दर में अभूतपूर्व वृद्धि हुई बकरीद के त्यौहार पर गाय की कुर्बानी की मुस्लिम प्रथा ने एक पवित्र प्रतिक के रूप में गाय के प्रति हिन्दुओं की भावनाओं को और प्रखर बना दिया.(मैक्लेन, 1977 : 276-79)



(गाय भारत में हिन्दुओं के लिए आस्था की केंद्र थी)

Source: <http://www.google.co.in/imgres>

गौ रक्षा के प्रश्न पर 19वीं सदी के अंत में भारत कई भयंकर हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए इसमें 1893 में बम्बई में हुआ दंगा महत्वपूर्ण था. इसके दंगे के बाद तिलक ने मुसलमानों के प्रति सरकार के समर्थन का आरोप लगाकर उनके मुहर्रम के त्योहार का बहिष्कार करने और भगवान गणपति की पूजा के सार्वजनिक त्योहार में भाग लेने के लिए हिन्दुओं का अहवान किया. उनके इस कदम से भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में दोनों धार्मिक समूहों के एकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा. 1896 में तिलक ने एक और त्योहार, शिवाजी त्योहार का शुरुआत की; जिसका उद्देश्य शिवाजी महाराज के राज्यारोहण का उत्सव मनाना था. शिवाजी और मुगलों के बीच के संघर्षों को हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच संघर्ष के रूप में दिखाया गया. **(वोल्पर्ट, 1962 : 80)** इस कारण दोनों समुदायों के बीच साम्प्रदायिकता की खाई और चौड़ी हुई, जिसने अंततः भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन के स्वरूप को सांप्रदायिक रंग देने का कार्य किया.

1907 में मुस्लिम लीग के स्थापना के साथ साथ हिन्दू महासभा की भी स्थापना पंजाब में की गयी; इसने अपने आप को सामाजिक-धार्मिक क्षेत्रों तक सीमित करते हुए कांग्रेस के एक अंग के रूप में कार्य करने का निर्णय लिया लेकिन बाद के वर्षों में भारत को एक राष्ट्र के रूप में बाँधने की और मुसलमानों के तुष्टिकरण करने तथा हिन्दू हितों के बलिदान के कांग्रेस के प्रयासों की आलोचना की. जब 1921 में गांधीजी द्वारा शुरू किया गये असहयोग आन्दोलन और खिलाफत आन्दोलन का गठजोड़ टूट गया, जिसके फलस्वरूप हिन्दू-मुस्लिम सम्बन्धों में खटास पैदा हो गयी तो लाला लाजपत राय और पंडित मदन मोहन मालवीय के नेतृत्व वाली हिन्दू महासभा ने हिन्दू हितों के रक्षा के नाम पर अपनी सामाजिक-धार्मिक भूमिका से आगे बढ़ते हुए राजनीति में प्रवेश का निर्णय किया जिससे चुनावों में धार्मिक धुवीकरण हुआ और सांप्रदायिक राजनीति को बढ़ावा मिलाइसी कड़ी में विनायक दामोदर सावरकर ने भारत को हिन्दू राष्ट्र बताया तथा मुस्लिमों और अन्य अल्पसंख्यकों के राष्ट्रीय निष्ठा पर संदेह प्रगट किया. उन्होंने भारतीय संस्कृति को हिन्दू संस्कृति के रूप में परिभाषित करते हुए मुस्लिमों को बाहरी करार दिया. इसी प्रकार 1924 में गुरु गोलवरकर ने नागपुर में राष्ट्रीय स्वयं संघ की स्थापना की जिसने अपना लक्ष्य भारत को एक हिन्दू राष्ट्र में परिवर्तित करना तय किया.

इसप्रकार उपरोक्त कारणों ने भारतीय समाज में साम्प्रदायिकता को विस्तार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई. अंग्रेजों से पहले भारत में जितने भी विदेशी आक्रमणकारी आये थे; या तो उनका उद्देश्य भारत को लूटकर जाना था, या यहाँ शासन करने के साथ-साथ यही रहना और संस्कृति में घुल मिल गये. लेकिन अंग्रेज इन दोनों प्रकार के विदेशियों से भिन्न इस मामले में थे कि न तो उनका उद्देश्य यहाँ से अल्पकाल के लिए धन की लुट थी और नहीं वे यहाँ की संस्कृति में घुल सके. बल्कि उन्होंने यहाँ की संस्कृति और परम्पराओं में इसप्रकार परिवर्तन किया जिससे उन्हें यहाँ अपने शासन प्रक्रिया सुचारू रूप से चलाने में मदद मिल सके. अपने शासन प्रणाली को स्थिरता और वैधता प्रदान करने के लिए उन्होंने अनेक तरीके अपनाये उनमें से प्रमुख रणनीति यह थी कि यहाँ के परंपरागत सामाजिक-धार्मिक ढांचा जो कि परस्पर एकता पर आधारित था को तोड़ा जाये ताकि यह उनकी सत्ता के लिए खतरा नहीं बन सके. इसके लिए जहाँ उन्होंने विभिन्न कुटिल नीतियों का सहारा लिया वही कुछ मामलों में भारतीय समाज में व्याप्त कमजोरियों को उभारकर उससे फायदा उठाया. एक बहुलतावादी समाज में जहाँ एक तरफ सहमति के अनेक विन्दु होते जो उस समाज को एकताबद्ध करते हैं; वही वहां मतभेद के भी अनेक विन्दु होते हैं जिनके उभरने पर राष्ट्रीय एकता खतरे में पड़ सकती है. अंग्रेजों ने भारतीय समाज के सहमति वाले विन्दुओं को

छिपाकर, असहमति को उभारने की नीति अपनाई जिसमें उन्हें सफलता मिली और देश में साम्प्रदायिकता को बढ़ावा मिला.

### ❖ भारत में साम्प्रदायिकता का विकास

भारत जैसे धार्मिक व सांस्कृतिक बहुलता पर आधारित देश में जहाँ सभी धर्मों के लोग एक साथ मिलकर सदियों से रहते आये थे, में साम्प्रदायिकता का विकास एक आकस्मिक घटना नहीं थी बल्कि यह अंग्रेजों द्वारा अपने साम्राज्यवादी एवं औपनिवेशिक हितों की पूर्ति के लिए उभारी गयी एक क्रमिक प्रक्रिया थी. जैसा कि ऊपर कहाँ गया है कि इस देश में हिन्दू बहुसंख्यकों के बीच बहुत समय तक मुस्लिम शासकों ने शासन किया भारत अशोक की शांतिप्रियता और अकबर की सहिष्णुता के लिए विश्व भर में प्रसिद्ध रहा है और अंग्रेजों के आने के बाद तक यह स्थिति बनी रही, लेकिन 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम जिसे अंग्रेज इतिहासकार सैनिक विद्रोह की संज्ञा देते हैं, के बाद ब्रिटिश शासकों ने अपने साम्राज्यवादी हितों की पूर्ति के लिए "फूट डालो और शासन करो" की नीति के तहत भारत में साम्प्रदायिकता को उभारने की कोशिश शुरू की, जिसकी परिणति अंततः देश के धार्मिक आधार पर देश के विभाजन के रूप में हुई

भारत में साम्प्रदायिकता के विकास के काल को हम तीन चरणों में विभाजित कर सकते हैं-

प्रथम, 1857 की क्रांति से लेकर 1905 के बंगाल विभाजन तक.

दूसरा, 1905 के बंग-भंग से लेकर 1929 की नेहरू रिपोर्ट तक.

तीसरा, नेहरू रिपोर्ट से लेकर देश के विभाजन तक.

### 1. 1857 के क्रांति से लेकर बंगाल विभाजन तक के काल में भारत में साम्प्रदायिकता का विकास:-

अंग्रेजों के विरुद्ध 1857 के क्रांति का कारण धार्मिक और राजनीतिक दोनों थे. जहाँ जनता पहले से ही अंग्रेजों की राजनितिक निरंकुशता और आर्थिक शोषण पर आधारित शासन से परेशान थी वही जब जनता को यह एहसास हुआ कि अंग्रेज सरकार उनके धार्मिक भावना के साथ भी खिलवाड़ कर रही है तो उसके सब्र की सीमा टूट गयी और उन्होंने ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध विद्रोह कर दिया. हिन्दू और मुसलमान दोनों ने कंधे से कन्धा मिलाकर एक साथ उस आन्दोलन में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष किया और भारत की परंपरागत बहुलता तथा धर्मनिरपेक्षता का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करते हुए बहादुर शाह जफर को भारत का सम्राट घोषित कर दिया. विद्रोही सैनिकों, जिनमें की हिन्दू और मुस्लिम दोनों धर्मों को मानने वाले लोग थे, ने जिस प्रकार एकजुट होकर ब्रिटिश शासन का विरोध किया उससे अंग्रेजों को फिर से भारत के सम्बन्ध में अपनी नीति को परिवर्तित करने को मजबूर कर दिया. उनको यह आभास हो गया कि अगर इसी प्रकार अंग्रेजों के खिलाफ भारत में धार्मिक एकता बनी रही तो अंग्रेजी शासन का ज्यादा दिन तक यहाँ टिकना मुश्किल हो जायेगा. 1857 की क्रांति में मुस्लिमों और मुस्लिम शासकों की भूमिका को देखते हुए अंग्रेजी सरकार ने मुस्लिमों के खिलाफ बहुत ही भेदभावपूर्ण नीति अख्तियार की और हिन्दुओं का पक्ष लेना शुरू कर दिया. सरकारी पदों पर मुस्लिमों की नियुक्ति लगभग समाप्त कर दी गयी और उन्हें सरकार द्वारा संदेह की नज़रों से देखा गया. सरकार द्वारा मुस्लिमों से भेदभाव और



हिन्दुओं का खुलेआम पक्ष लेने से भारत में हिन्दू-मुस्लिम एकता को अपूर्णीय क्षति हुई और मुस्लिम वर्ग में यह धारणा बनने लगी कि हिन्दुओं और अंग्रेजों के बीच मुस्लिमों के खिलाफ एक प्रकार का गठबंधन बन गया है. अतः इससे जहाँ एक तरफ हिन्दुओं और मुस्लिमों के बीच संदेह व अविश्वास की भावना पनपने लगी वही भारत के मुस्लिम समुदाय के विद्वानों और धार्मिक गुरुओं ने अंग्रेजों और मुस्लिमों के बीच अच्छे सम्बन्ध के निर्माण के लिए अंग्रेजी सरकार की तरफ मैत्री का हाथ बढ़ाये और मुसलमानों को ब्रिटिश सरकार के प्रति निष्ठावान होने की नसीहत दी.उन्ही में से एक प्रमुख व्यक्ति सर सैयद अहमद खान थे. सर सैयद ने मुस्लिमों के आर्थिक और सामाजिक पिछड़ापन का प्रमुख कारण उनमें आधुनिक शिक्षा के प्रति उपेक्षा के भाव को माना. अतः उन्होंने 1860 के दशक में मुस्लिमों के लिए आधुनिक और अंग्रेजी शिक्षा की वकालत की ताकि उनको ब्रिटिश सरकार के अंतर्गत होने वाले सरकारी पदों के योग्य बनाया जा सके. सर सैयद अहमद खान को भारत में मुस्लिम पुनर्जागरण का अग्रदूत कहाँ जाता है. उन्होंने अपना जीवन एक ऐसे मुस्लिम उदारवादी के रूप में शुरू किया जो हिन्दू और मुसलमानों को भारत माता के दो नेत्रों के रूप में परिभाषित करते थे. उनका मुख्य ध्येय बिना किसी सांप्रदायिक भेदभाव के मुस्लिमों में वैज्ञानिक आधुनिकता और अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार कर उन्हें सरकारी पदों के योग्य बनाना था. इसी उद्देश्य को पुरा करने के लिए उन्होंने अलीगढ़ कॉलेज की स्थापना की जिसे हिन्दुओं की तरफ से अनुदान प्राप्त हुए. लेकिन कांग्रेस की स्थापना के बाद सर सैयद में यह विचार पनपने लगा की भारत में हिन्दुओं और मुसलमानों के हित एक दुसरे से विल्कुल अलग हैं और मुस्लिम जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हिन्दुओं से काफी पिछड़े हुए हैं अतः उनका ऐसा विश्वास था कि मुस्लिमों को कांग्रेस के नेतृत्व में होने वाले राष्ट्रवादी गतिविधियों से खुद को दुर रखना चाहिए और अंग्रेजों के साथ अपना मेलजोल बढ़ाना चाहिए ताकि वे उनके सहायता से कांग्रेस की हिन्दुओं के बहुसंख्यकवाद से निपट सके क्योंकि कांग्रेस की स्थापना के समय से ही हिन्दू प्रभुत्व का डर बुरी तरह उनके दिमाग में छाया हुआ था. सर सैयद की राजनितिक विचारधारा इस विचार पर आधारित थी कि भारतीय समाज विभिन्न परस्पर विरोधी समुदायों का जमघट है और इसको कोई एक तानाशाही शासन व्यवस्था ही नियंत्रण में रख सकती है. पहले यह काम मुगलों ने किया, अंग्रेजों शासन के दौरान यह ब्रिटिश महारानी कर रही हैं, लेकिन देश की आज़ादी के बाद आने वाली व्यवस्था में यह काम कांग्रेस के नेतृत्व वाली सरकार करेगी जिसमें स्वाभाविक रूप से हिन्दुओं का वर्चस्व होगा अतः ऐसे शासन व्यवस्था में मुस्लिमों को दोगम दर्जे के नागरिकों के सामान जीना होगा. इसी कारण से उन्होंने कांग्रेस के नेतृत्व वाले राष्ट्रीय आन्दोलन से मुस्लिमों को दुर रहने और उन्हें अंग्रेजों से अपनी नजदीकियां बढ़ाने की सलाह दी. वे मुस्लिमों को अलग राष्ट्र के रूप में देखते थे. उनके इस प्रकार के अपील का हिन्दू-मुस्लिम एकता पर विपरीत प्रभाव पड़ा और कांग्रेस के अधिवेशनों में मुस्लिमों की संख्या निरंतर घटती गयी. सर सैयद के इन आशंकाओं का आधार भी था क्योंकि बम्बई के राजनीतिज्ञ बदरुद्दीन तैयब जी के कांग्रेस में उल्लेखनीय योगदान को छोड़ दिया जाये तो, कांग्रेस के आरंभिक नरमपथियों में लगभग सारे राजनीतिज्ञ मुख्यतः हिन्दू ही थे. 1892 और 1909 के बीच के कांग्रेस के अधिवेशनों में आए प्रतिनिधियों में लगभग 90% हिन्दू थे जबकि केवल 6.5% मुस्लिम थे. हिन्दुओं में भी लगभग 40% ब्राह्मण और बाकी सवर्ण हिन्दू थे. (घोष, 1960: 11)

इसप्रकार के कांग्रेसी सरंचना को देखते हुए सर सैयद ने कांग्रेस और इसके कार्यक्रमों के विपरीत 1888 में "यूनाइटेड पैत्रिआतिक एसोसिएशन" की स्थापना की. जिसका उद्देश्य मुस्लिम राजनीतिक विचारों का प्रसार करना था. **कूपलैंड के अनुसार** " कांग्रेस राष्ट्रवाद से मुस्लिम विमुखता मुख्यतः सर सैयद अहमद की दैन थी."

वास्तव में सर सैयद और उनके अनुयायियों ने सांप्रदायिक विचारधारा के सभी मौलिक तत्व जुटा दिए. मूल विचार यह था कि एक ऐसे देश में जहाँ के लोग एक समान न हो, प्रतिनिधि सरकार की शुरुआत करने से कई तरह की बुराइयाँ उत्पन्न होगी क्योंकि आम जनता अपना मत राजनीतिक आधार पर नहीं देकर धार्मिक भिन्नता के आधार पर देगी और प्रतिनिधि शासन के नाम पर पुरे प्रशासन पर कांग्रेस का अधिकार हो जायेगा और इस तरह भारत के प्रशासनिक व राजनीतिक क्षेत्रों में हिन्दू बहुमत में हो जायेगे. अर्थात सर सैयद ने एक तरह से कांग्रेस को एक हिन्दू संगठन घोषित कर दिया जिसके उद्देश्य मुस्लिम हितों के विरुद्ध था. सर सैयद के मुस्लिम सांप्रदायिक अपील के प्रत्युत्तर में कांग्रेस ने 1888 में एक नियम यह बनाया कि अगर हिन्दू या मुसलमान प्रतिनिधियों का भारी बहुमत आपत्ति करे तो कोई भी प्रस्ताव पारित नहीं होगा. इसके साथ-साथ 1889 में विधायिकाओं के सुधार की मांग करनेवाले प्रस्ताव में अल्पसंख्यकों के समानुपाती प्रतिनिधित्व की सिफारिश करने वाली एक धारा भी जोड़ी गयी. (चन्द्र आदि, 1989 : 75) लेकिन कांग्रेस द्वारा अल्पसंख्यक विश्वास को जीतने की इस कयावद को भी कुछ ज्यादा सफलता नहीं मिल पाई. और भारत में मुस्लिम-हिन्दू विश्वास में कमी बढ़ती गयी जिसका फायदा उठाकर ब्रिटिश सरकार ने 1909 में बांटों और राज करों की नीति के तहत सांप्रदायिक आधार पर पृथक निर्वाचन की व्यवस्था कर दी इसका दूरगामी प्रभाव अंततः देश का सांप्रदायिक आधार पर देश के विभाजन के रूप में हुआ.

सर सैयद के नेतृत्व में उभरे मुस्लिम सम्प्रदायवाद के प्रत्युत्तर में देश में हिन्दू सम्प्रदायवाद का भी उभार हुआ 1890 में दशक में महाराष्ट्र, पंजाब और देश के कुछ अन्य उत्तरी भाग में कुछ हिन्दू संगठन जिसमें आर्य समाज, रानाडे द्वारा संचालित संगठन तथा कुछ अन्य स्थानीय हिन्दू पुनरुत्थानवादी संगठनों ने गो-रक्षा के प्रश्न पर सांप्रदायिक हिंसा को बढ़ावा दिया उसकी परिणति 1893 के भीषण बम्बई दंगे के रूप में हुई. इस दंगे के बाद महाराष्ट्र के प्रमुख गरमपंथी नेता बालगंगाधर तिलक ने मुसलमानों के पक्ष में सरकार के होने का आरोप लगाते हुए मुहर्रम के त्योहार का बहिष्कार करने और भगवान गणपति के पूजा के सार्वजनिक त्योहार में भाग लेने के लिए पूना के हिन्दुओं का आह्वान किया. फलस्वरूप हिन्दू, जो पहले मुहर्रम के त्योहार में भाग लेते थे, अब अधिकतर उसका बहिष्कार करने लगे और गणपति पूजा के लिए एकजुट होने लगे. इससे धार्मिक उत्सवों जो पहले दोनों समुदायों के मध्य परस्पर समरसता के प्रतिक होते थे तथा इस अवसर पर दोनों समुदायों के लोग एक दुसरे को बधाइयाँ देते थे, अब यही धार्मिक उत्सव सांप्रदायिक तनाव के कारण बनने लगे तथा गणेश पूजा और मुहर्रम के दौरान होने वाले उत्सवों पर देश के अनेक भागों में दंगों की खबर आने लगी. गो-रक्षा सम्बन्धी दंगों के दौरान राजनीतिक लामबंदी के लिए हिन्दू धार्मिक और ऐतिहासिक प्रतीकों के उपयोग की दूसरी और भी खुली कोशिशें की गयी और महाराष्ट्र में तो तिलक के अगुआई में ये धार्मिक उत्सव और प्रतीक, सांप्रदायिक राजनीति के औजार बन गये. (शेखर बंदोपाध्याय, 2013 : 242)

इसप्रकार 1857 के क्रांति से लेकर 1905 तक का काल भारत में धार्मिक पुनरुत्थानवाद का काल था. इस काल में अंग्रेजों की नीतियों, सर सैयद अहमद खान के मुस्लिम अलगाववादी आन्दोलनों और गो-रक्षा के प्रश्न पर हुए भीषण दंगों के कारण देश में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच सदियों से चली आ रही परस्पर भाईचारे की भावना और 1857 के विद्रोह के समय दिखाई गयी एकता की मिशाल धुंधली पड़ती दिखाई दी. लेकिन अभी तक यह विवाद धार्मिक अलगाव तक ही सीमित था. लेकिन 1906 में मुस्लिम लीग के स्थापना के बाद उसकी सांप्रदायिक नीतियों,



कांग्रेस द्वारा की गयी कुछ गंभीर राजनीतिक भूलों और ब्रिटिश सरकार के बाटों और राज करों की नीति के कारण बाद में यह धार्मिक अलगाववाद राजनैतिक अलगाववाद में बदल गया

1905 के बंग-भंग आन्दोलन से लेकर 1929 के नेहरु रिपोर्ट तक:-



(नेहरु और लार्ड इर्विन के साथ जिन्ना)

Source: <http://www.google.co.in/imgres>

पहले चरण के स्वतंत्रता संग्राम में अंग्रेजी सरकार की नीतियों के कारण भारत में धार्मिक साम्प्रदायिकता के बीज बोये जा चुके थे तथा उन्हें खाद देने का कार्य भारत के कुछ ऐसे नेताओं, जो धर्म को अपने राजनीतिक एजेंडे की पूर्ति के लिए हथियार बनाना चाहते थे, ने दिया था. लेकिन पहले चरण में तमाम ब्रिटिश विभाजनकारी नीतियों के वावजूद भी भारतीय समाज में धार्मिक अलगाव की स्थिति तो पैदा हुई लेकिन वह अभी भी राजनीतिक व राष्ट्रीय एकता के मार्ग में बाधक नहीं बन पाई थी. अभी भी सर सैयद के तमाम निर्देशों के वावजूद भी अनेक मुस्लिम नेता व लोग कांग्रेस से जुड़े हुए थे लेकिन इसके साथ ही साथ भारतीय राजनीतिक परिदृश्य में एक बदलाव आना शुरू हो गया था, जिसके तहत भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का नरमपंथी नेतृत्व लोगों के बीच अपनी प्रभावशीलता खोता जा रहा था तथा उसके स्थान पर कांग्रेस में एक उग्रवादी पक्ष का उभार हो रहा था, जो नरमपंथी नेतृत्व के आन्दोलन की पद्धति से सहमत नहीं था. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रारंभिक उदारपंथी नेताओं की पद्धति याचिका और प्रार्थना पद्धति पर आधारित थी. वे ब्रिटिश सरकार को भारत के लिए अच्छा मानते थे, उनका प्रयास बस यह होता था की ब्रिटिश सरकार से भारतीयों के लिए ज्यादा से ज्यादा सुविधाएँ प्राप्त की जाए. अपनी तमाम धीमी सुधार प्रक्रिया के वावजूद भी उदारवादी नेताओं का भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में महत्वपूर्ण योगदान यह था की उन्होंने कभी भी राजनीति को धार्मिक रंग प्रदान नहीं किया तथा धर्म से राजनीति की एक उचित दूरी बनाये रखी. जिससे भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रकृति धर्मनिरपेक्ष बनी रही.

लेकिन उदारपंथी विचारधारा के विरुद्ध उठी उग्रपंथी विचारधारा अपने राजनीतिक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए धर्म के व्यापक उपयोग में विश्वास करती थी. पंजाब में लाला लाजपत राँय, बंगाल में विपिनचंद्र पाल और महाराष्ट्र में बालगंगाधर तिलक उग्रपंथी आन्दोलन के अगुआ बनकर उभरे. बालगंगाधर तिलक हिन्दुओं को एकजुट

करने के लिए का गणेश पूजा और दुर्गा पूजा का जमकर उपयोग करते थे. इसमें हालाँकि उनको सफलता भी मिली और महाराष्ट्र में गणेश पूजा का कार्यक्रम राष्ट्रीय आन्दोलन का एक पूरक तत्व बन गया. लेकिन इसके साथ ही उनके आन्दोलन में अल्पसंख्यकों की भागीदारी लगभग नगण्य हो गयी. अपने आन्दोलन में मुस्लिमों की घटती संख्या को देखते हुए तिलक इस निष्कर्ष पर पहुँच गये कि हिन्दुओं के खिलाफ मुस्लिमों और अंग्रेजों के बीच एक तरह का गठजोड़ है. उन्होंने अंग्रेजी सरकार द्वारा हिन्दुओं के प्रति भेदभाव के नीति का आरोप लगाते हुए मुस्लिमों पर अंग्रेजी सरकार से मिले होने का आरोप लगाया तथा हिन्दुओं से मुस्लिम पर्व-त्योहारों का बहिष्कार करने की अपील की. इसके प्रतिरोध में मुस्लिमों में भी अलगाववाद की भावना पनपी. अल्पसंख्यक समुदाय न केवल इस आन्दोलन से अपने आपको दूर किया, बल्कि उसने उभरते हुए बहुसंख्यकवादी राष्ट्रीय आन्दोलन से अपनी दूरी बनाते हुए अंग्रेजों के साथ अपने समीकरण सही करने की शुरु कर दिए जिसकी तरफ पहला कदम अंग्रेजों की पहल पर आंगा खान के नेतृत्व में १९०६ में मुस्लिम लीग की स्थापना हुई

### ➤ बंगाल विभाजन और सांप्रदायिक तनाव:-

इस काल में भारत में साम्प्रदायिकता के विकास का एक महत्वपूर्ण चरण अंग्रेजों द्वारा बंगाल का विभाजन करना था. इसके लिए हालाँकि उन्होंने इसका कारण तो प्रशासनिक बताया लेकिन इसका मुख्य कारण बंगाल का क्षेत्रीय विभाजन धर्म के आधार पर कर के स्वतंत्रता आन्दोलन की प्रक्रिया को कमजोर करना था क्योंकि बंगाल उस समय राष्ट्रीय आन्दोलन का एक प्रमुख केंद्र बन चुका था. बंगाल का विभाजन करके जहाँ ब्रिटिश सरकार मुसलमानों के बीच यह सन्देश देना चाहती थी कि नया प्रान्त बन जाने से उन्हें राजनीतिक व प्रशासनिक अवसर ज्यादा प्राप्त होंगे, साथ ही ब्रिटिश सरकार पहले से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और बंगाल के राष्ट्रवादियों द्वारा इस विभाजन के अवश्यम्भावी विरोध की दशा में इस विवाद को हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष का रूप देना चाहती थी. कुछ हद तक अंग्रेजों यह नीति सफल भी रही जब मुस्लिमों का एक बहुत बड़े तबके ने अंग्रेजों झांसे में आते हुए बंगाल विभाजन के समर्थन में उतर आया और इसके खिलाफ होने वाले आन्दोलन को उन्होंने हिन्दू बहुसंख्यक तानाशाही की संज्ञा दी. अंग्रेजों द्वारा बहकाए गये मुस्लिमों के द्वारा बंगाल विभाजन का जबर्दस्त समर्थन किया गया और इसके बाद बंगाल के अनेक भागों में हिन्दू मुस्लिम दंगे भड़क उठे. ये दंगे मुख्यतः बंगाल विभाजन के विरोधियों और समर्थकों के बीच हुए. हालाँकि इन दंगों का तत्कालिक कारण बंगाल विभाजन का विरोध या समर्थन था लेकिन इस दंगे की प्रवृत्ति मुख्यतः आर्थिक थी जो हिन्दू जमींदारों या पूंजीपतियों और मुस्लिम मजदूरों और श्रमिकों के बीच थी. मुस्लिम श्रमिक या मजदूर खुद को हिन्दू पूंजीपतियों द्वारा शोषित मानते थे और उनका विश्वास था कि अगर राज्य का विभाजन हो जायेगा तो उनके लिए नए रोजगार के अवसर खुलेंगे. लेकिन जब कांग्रेस तथा अन्य ने बंगाल विभाजन का विरोध करना शुरू किया तो मुस्लिम श्रमिकों और मजदूरों ने हिन्दू धनिकों और जमींदारों के ऊपर हमले करने शुरू कर दिए. 1907-08 में पबना प्रांतीय सम्मलेन में दिए गये अपने अध्यक्षीय भाषण में रविंद्रनाथ ठाकुर ने कहा था "कि दंगों के लिए केवल अंग्रेजों को ही दोष देना पर्याप्त नहीं है. "शैतान तभी भीतर आ सकता है जब उसे आने का मार्ग मिले" और मूल समस्या तो यह थी कि हम थोड़े से शिक्षितों और देश के करोड़ों सामान्यजन के बीच एक खाई मौजूद है जो हिंसा का कारण है." लेकिन अंग्रेजों की फूट डालो और राज करो की तमाम कोशिशों के बावजूद भी बंग-भंग विरोधी राष्ट्रवादी आन्दोलन के समक्ष आखिरकार अंग्रेजी हुकूमत को झुकना पड़ा और 1911 में बंगाल विभाजन को रद्द करना पड़ा. बंगाल विभाजन रद्द होने से बंगाल के उन मुस्लिमों को बहुत निराशा हुई जो नए राज्य में अपने लिए कुछ विशेष राजनीतिक व प्रशासनिक विशेषाधिकारों की उम्मीद लगा रखे

थे. उन्होंने इसको हिन्दू बहुमतवाद का एक उदहारण माना और मुस्लिमों के बीच यह प्रचार किया गया कि अगर कांग्रेस के नेतृत्व में ब्रिटिश शासन से आज़ादी प्राप्त हो गयी तो भी यह मुख्यतः हिन्दुओं की तानाशाही पर आधारित रहेगी और मुस्लिमों को दोगम दर्जे की नागरिकता प्राप्त होगी.

### ➤ मुस्लिम लीग की स्थापना और इसकी भूमिका:-

कुछ मुसलमान पूंजीपतियों ने मुसलमानों द्वारा मुस्लिमों के हितों के रक्षा के लिए मुस्लिम लीग के रूप में एक राजनीतिक संगठन की स्थापना थी. मुस्लिम लीग के स्थापना का मुख्य उद्देश्य भारत को अंग्रेजों से स्वतंत्र कराना नहीं होकर अंग्रेजों के प्रति भारतीय मुस्लिमों के दृष्टिकोण को परिवर्तित कर उन्हें ब्रिटिश सरकार के नजदीक लाना था. इसके साथ-साथ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व में चल रहे राष्ट्रवादी आन्दोलन को कमजोर करना था. इसप्रक्रिया में जहाँ एक तरफ मुस्लिम लीग ब्रिटिश सरकार से मुस्लिमों के लिए कुछ विशेष रियायतों की मांग करती वही दूसरी तरफ वह अंग्रेजी सरकार के इशारे पर कांग्रेस को एक हिन्दू संगठन के रूप में प्रचारित करती रही और स्वयं को मुस्लिमों के सच्चे प्रतिनिधि दल के रूप में प्रचारित करती. इससे हिन्दू मुस्लिम एकता को क्षति पहुँची तथा भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को संप्रदायीकरण शुरू हो गया आगे आने वाले समय में इसी मुस्लिम लीग ने धार्मिक आधार पर देश के विभाजन की मांग उठाई तथा प्रत्यक्ष कार्यवाही की प्रक्रिया द्वारा देश में बड़े-बड़े दंगे कराकर दो-राष्ट्र सिद्धांत के आधार पर पाकिस्तान का निर्माण कराया.

### ➤ 1909 के मार्ले-मिंटो अधिनियम द्वारा साम्प्रदायिक निर्वाचन की व्यवस्था:-

अपनी फूट-डालों और शासन करों की नीति के तहत अंग्रेजों ने भारत में सांप्रदायिक आधार पर निर्वाचन क्षेत्रों की व्यवस्था करते हुए मुसलमानों के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्रों की व्यवस्था की इन क्षेत्रों से चुनाव भी केवल मुस्लिम लड़ सकते थे तथा वोट भी केवल मुस्लिम दे सकते थे. ऐसा करके ब्रिटिश सरकार मुसलमानों को अपने पक्ष में मिलाना चाहती थी ताकि कांग्रेस के नेतृत्व में चलने वाले राष्ट्रीय आन्दोलन को कमजोर किया जा सके. अपनी स्वाभाविक धर्मनिरपेक्ष नीति के तहत कांग्रेस ने इसका विरोध किया लेकिन मुस्लिम समुदाय और लीग द्वारा इस व्यवस्था का जोरदार समर्थन करने के कारण कांग्रेस भी एक सीमा के बाद इसका विरोध नहीं कर पाई. इस व्यवस्था से हिन्दुओं में जहाँ यह सन्देश गया कि ब्रिटिश सरकार मुस्लिमों का पक्ष ले रही है तथा मुस्लिम भी अंग्रेजों से मिले हुए हैं, वही दूसरी तरफ कांग्रेस और हिन्दुओं द्वारा इस व्यवस्था का विरोध करने पर मुस्लिमों के मध्य यह धारणा बनी कि कांग्रेस और हिन्दू लोग उन्हें सामान राजनीतिक व प्रशासनिक हिस्सेदारी नहीं प्रदान करना चाहते. इस प्रकार दोनों समुदायों में अविश्वास का माहौल बना और अंग्रेज सरकार को मुसलमानों में यह प्रचारित करने का मौका मिल गया कि दरअसल कांग्रेस और हिन्दू उनका हित नहीं चाहते इसी कारण उनको प्रदान की गई सीटों के आरक्षण का विरोध कर रहे हैं. 1909 के अधिनियमों के विभाजनकारी प्रावधानों का भारतीय राजनीति और समाज पर बहुत ही दूरगामी प्रभाव पड़े तथा इसने भारतीय समाज को धार्मिक रूप से विभाजित कर दिया. आगे चलकर 1919 में हम देखते हैं कि कैसे इस पृथक निर्वाचन के व्यवस्था का प्रसार भारत के अन्य अल्पसंख्यक समूहों (सिख, इसाई और एंग्लो-इंडियन) तक किया गया. इसी रास्ते पर चलते हुए अंग्रेजों ने सांप्रदायिक पंचाट के द्वारा भारत के दलित समाज, जो हिन्दू समाज का भाग था को भी अलग से प्रतिनिधित्व प्रदान करने की कोशिश की गयी इसके विरुद्ध महात्मा गाँधी को अनशन करना पड़ा तब जाकर पूना समझौता के माध्यम से

दलित प्रतिनिधियों और गाँधी जी के बीच एक समझौता संपन्न हुआ जिसके तहत दलित समाज के लिए उनकी जनसँख्या के अनुपात में विधानमंडल में स्थान आरक्षित किये गये. इस प्रकार 1890 के बाद से भारत में शुरू हुए धार्मिक अलगाववाद की प्रक्रिया अब राजनीति में भी प्रवेश कर गयी जिससे भारतीय समाज और राजनीति का साम्प्रदायीकरण शुरू हुआ इसकी परिणति अंततः धार्मिक आधार पर देश के विभाजन के रूप में सामने आई.

### ➤ लखनऊ पैक्ट और खिलाफत आन्दोलन और असहयोग आन्दोलन :-

मुस्लिम लीग ने अपने स्थापना के बाद के शुरुआती दौर में मुस्लिमों को ब्रिटिश सरकार के नजदीक लाने तथा उनसे मुस्लिमों के हित में कुछ रियायतें प्राप्त करने के लिए ब्रिटिश समर्थक नीति का पालन किया. लेकिन जल्दी ही कुछ पढ़े-लिखे मुस्लिमों को यह लग गया की अंग्रेजों के पिढू बनकर रहना मुस्लिमों के व्यापक और दीर्घकालीन हित में नहीं है. प्रथम विश्व युद्ध से पहले नए मुस्लिम मध्य वर्ग में भी राजनितिक परिपक्वता आ गयी थी. शिक्षित और मुखर नए मध्य वर्ग ने साम्राज्यवादी व्यवस्था पर अपनी निर्भरता त्याग दी तथा इससे अपनी असंतुष्टि प्रगट करने लगे. डॉ. अंसारी, अबुल कलाम आजाद, मौलाना मोहम्मद अली, हाकिम अजमल खां बड़े प्रखर मुस्लिम नेता थे जो सैयद अहमद खान के विचारों एवं उद्देश्यों तथा अलीगढ़ आन्दोलन की प्रशंसा करते हुए भी इस बात में विश्वास रखते थे कि मुसलमानों को अंग्रेजी सरकार से नजदीकियां त्यागकर राष्ट्रीय आन्दोलन का भाग बनना चाहिए. उन्हें कांग्रेस के साथ समझौता करना चाहिए ताकि उपनिवेशवादी विरोधी आन्दोलन को गति प्रदान की जा सके. मुस्लिम लीग ने भी इस दिशा में कदम उठाते हुए 1916 में अपने लखनऊ अधिवेशन में ब्रिटिश क्राउन की छत्रछाया में भारत के लिए उपयुक्त स्वशासन का प्रस्ताव पास किया परन्तु दुर्भाग्यवश उनका राष्ट्रवाद इस सीमा तक गलत था कि यह पूर्णतः धर्मनिरपेक्ष नहीं था बल्कि यह सांप्रदायिक और सर्व इस्लामिक रंग लिए हुए था. आधुनिक साम्राज्यवाद के आर्थिक तथा राजनीतिक परिणामों को समझने तथा उसका विरोध करने के बजाय इसने खिलाफत के मुद्दे तथा भारत से बाहर मुस्लिमों के पवित्र स्थानों की सुरक्षा के लिए ब्रिटिश शासन का विरोध किया. अपनी स्थापना के बाद से ही मुस्लिम लीग खुद को मुस्लिमों के एकमात्र सच्चे प्रतिनिधित्व का दावा करती थी तथा कांग्रेस को एक हिंदूवादी संगठन के रूप में प्रचारित करती थी. लेकिन कांग्रेस अपनी धर्मनिरपेक्ष छवि को लेकर बहुत जागरूक थी तथा वह समाज के सभी धर्मों और वर्गों के हितों के प्रति सचेष्ट थी. लेकिन स्वतंत्रता आन्दोलन को एक नयी दिशा देने और एक राष्ट्रीय एकता का सन्देश देने के लिए कांग्रेस और मुस्लिम लीग में 1916 के लखनऊ अधिवेशन में एक राजनितिक एकता लायी गयी तथा दोनों दलों ने एक साझा कार्यक्रम के तहत राष्ट्रीय आन्दोलन में सहयोग का निर्णय लिया. इस पैक्ट में पृथक निर्वाचन क्षेत्र तथा विधानमंडल में अल्पसंख्यकों के महत्व के अनुसार सीटों के आरक्षण को स्वीकार कर लिया गया. हालाँकि यह समझौता मजबूरी में किया गया फिर भी यह एक प्रतिगामी कदम था क्योंकि पृथक निर्वाचन के सिद्धांत को स्वीकार करके कांग्रेस ने वास्तव में साम्प्रदायिकता की राजनीति को स्वीकार कर लिया और मुस्लिम लीग को अप्रत्यक्ष रूप से मुसलमानों के प्रतिनिधि संस्था के रूप में मान्यता प्रदान कर दी.

लखनऊ पैक्ट के द्वारा मुस्लिमों की संस्था के रूप में मुस्लिम लीग को मान्यता प्रदान करने के साथ ही एक नए प्रकार के साम्प्रदायिकता का विकास हुआ लेकिन उससे भी गंभीर भूल करते हुए कांग्रेस और महात्मा गाँधी ने असहयोग आन्दोलन में मुस्लिमों का समर्थन प्राप्त करने के लिए मुस्लिमों के धार्मिक आन्दोलन खिलाफत को



असहयोग आन्दोलन से जोड़ने पर अपनी रजामंदी दे दी. यह एक नए प्रकार का विरोधाभास था क्योंकि जहाँ भारतीय स्वतंत्रता संग्राम लोकतंत्र, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और धर्मनिरपेक्षता के लिए लड़ा जा रहा था वही खिलाफत आन्दोलन को समर्थन देकर कांग्रेस और गाँधी तुर्की के एक धार्मिक तानाशाह खलीफा के शासन को कायम रखना चाहते थे. जबकि स्वं तुर्की की जनता मुस्तफा कमाल पाशा के नेतृत्व में खलीफा के शासन को समाप्त करने और वहाँ एक लोकतान्त्रिक शासन प्रक्रिया को लाने के लिए संघर्ष कर रही थी. हालाँकि असहयोग- खिलाफत आन्दोलन के दौरान भारत में हिन्दू-मुस्लिम एकता अपने चरम पर रही लेकिन यह क्षणिक रही. इसके अतिरिक्त एक ध्यान देने वाली बात यह है कि असहयोग आन्दोलन की चरम सीमा पर भी मुस्लिम लीग ने हिन्दू-मुस्लिम एकता के सिद्धांत को स्वीकार नहीं किया. कांग्रेस और खिलाफत अलग-अलग संस्थाएँ बनीं रहीं. खिलाफत आन्दोलन ने रुढ़िवादी मुसलमानों को राजनीति में प्रवेश का मौका दिया जो स्वतंत्र भारत को धार्मिक समुदायों के एक संघ से ऊपर नहीं देखते थे. खिलाफत आन्दोलन ने मुस्लिम मध्यवर्ग की राष्ट्रीय तथा साम्राज्यवाद विरोधी भावना को अवश्य जगाया परन्तु उनकी धार्मिक राजनितिक चेतना को उच्चतर धरातल पर ले जाकर उसे धर्मनिरपेक्ष राजनितिक चेतना में परिवर्तित करने में असफल रहा. संक्षेप में इस गठबंधन ने भारत में साम्प्रदायिकता को पनपने का मौका दिया.

#### ➤ असहयोग आन्दोलन के बाद देश में सांप्रदायिक स्थिति:-

असहयोग आन्दोलन की समाप्ति के बाद जब खिलाफत आन्दोलन की भी समाप्ति हो गयी तथा तुर्की में मुस्तफा कमालपाशा के नेतृत्व में एक धर्मनिरपेक्ष लोकतान्त्रिक सरकार की स्थापना हो गयी. इसके साथ ही उस आन्दोलन के समय बना तत्कालिन अवसरवादी हिन्दू-मुस्लिम गठजोड़ भी समाप्त हो गया. और देश में पुनः हिन्दू-मुस्लिम तनाव जन्म लेने लगे. हिन्दू महासभा जिसकी स्थापना पहले ही की गयी थी लेकिन अबतक वह सुषुप्त अवस्था में पड़ी हुई थी इसका फिर से जागृत होना तथा इसके साथ ही 1925 में एक अन्य अर्ध-सैनिक हिन्दू संस्था के रूप में हेगड़ेवार द्वारा भारतीय राष्ट्रीय स्वंसेवक संघ की स्थापना से भारत में हिन्दू-पुनरुत्थानवाद का जन्म हुआ जिससे देश में दोनों समुदायों के बीच साम्प्रदायिक तनावों में वृद्धि हुई. हिन्दू महासभा के नेता लाला लाजपत राय ने हिन्दुओं और मुसलमानों को दो अलग-अलग राष्ट्र बताते हुए उनके लिए एक अलग देश की परिकल्पना प्रस्तुत की जिसमें चार प्रान्त होने थे- (1) उत्तर-पश्चिम का पठान प्रान्त, (2) पश्चिमी पंजाब, (3) सिंध, और चौथा पूर्वी बंगाल. इसप्रकार मुस्लिम लीग के पाकिस्तान की मांग के पहले ही हिंदूवादी नेता भी भारत में मुस्लिम-हिन्दू के अलग-अलग हितों के बारे में बात करने लगे थे. इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय स्वंसेवक संघ ने सावरकर के विचारों को अपनाते हुए यह विचार रखा कि भारत में रहने वाले गैर हिन्दू लोगों को हिन्दू संस्कृति और भाषा अपनानी चाहिए. हिन्दू धर्म की इज्जत करते हुए हिन्दू नस्ल तथा संस्कृति के उत्थान के सिवाय और कुछ नहीं सोचना चाहिए इसप्रकार हिन्दू-पुनरुत्थानवादी राजनीति के उभार ने भारत में सांप्रदायिक तनावों को और चौड़ा कर दिया. इसने अल्पसंख्यकों के मन में हिन्दू बहुमतवाद का एक डर पैदा कर दिया. इस दौर में साम्प्रदायिकता की अभिव्यक्ति कई दंगों के माध्यम से हुई. सितम्बर 1924 में उत्तर-पश्चिमी प्रान्त के कोहाट शहर में जबर्दस्त हिन्दू विरोधी दंगे हुए जिसमें 155 लोगों की हत्या हुई. अप्रैल-तथा जुलाई 1926 के बीच कलकत्ते में कई सांप्रदायिक फसाद हुए जिसमें 138 लोगों की जाने गयी. इसी वर्ष ढाका, पटना, रावलपिंडी तथा दिल्ली में भी कई दंगे हुए. इन सभी दंगों में बार-

बार दोहराए जाने वाला एक ही मुद्दा था- मुसलमान चाहते थे कि मुस्जिदों के आगे संगीत पर प्रतिबन्ध लगे तथा हिन्दू चाहते थे कि गौ-हत्या बंद हो.

सांप्रदायिक दंगा हिन्दू-मुस्लिम विभाजन का एक बाहरी रूप था. असली मुद्दा राजनीतिक था. अपने समुदाय के भविष्य, आकांक्षाओं तथा आर्थिक सुरक्षा को लेकर पैदा होने वाली आशंकाओं से दोनों समुदाय चिंतित थे. जहाँ हिन्दू समुदाय मुसलमानों की इतर- प्रादेशिक निष्ठा तथा सर्व-इस्लामिक आकांक्षाओं को लेकर चिंतित था, वही मुसलमान स्वतंत्रता के बाद उत्पन्न होने वाले हिन्दू-बहुमतवाद से चिंतित थे इसलिए उन्हें पहले पृथक निर्वाचन क्षेत्रों की मांग उठाई और धीरे-धीरे वे मुस्लिम बहुसंख्यक प्रान्तों में वृद्धि की मांग करने लगे. अपने 1925 के अधिवेशन में मुस्लिम लीग ने एक रायल कमीशन की नियुक्ति की मांग की, जो भारत के लिए एक ऐसी उत्तरदायी सरकार की योजना तैयार कर सके जिसमें सभी विधानसभाओं में अल्पसंख्यकों को उचित प्रतिनिधित्व मिल सके तथा अल्पसंख्यकों के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्र निश्चित किये जा सकें.

इसप्रकार हिन्दू और मुस्लिम दोनों साम्प्रदायिकता में कुछ तत्व सांझे थे. दोनों सांप्रदायिक समूहों को समाज के पतनकारी तथा संकीर्णवादी वर्गों का समर्थन प्राप्त था जैसे जमींदार, सामंत अथवा राजा-महाराज. दूसरा उनका संघर्ष ब्रिटिश शासन के विरुद्ध न होकर आपस में था और उन्हें ब्रिटिश सरकार से अप्रत्यक्ष समर्थन प्राप्त होता रहा. दोनों ने कांग्रेस का जो एक उदारवादी धर्मनिरपेक्ष, प्रजातान्त्रिक राज्य की धारणा का प्रतिनिधित्व कर रही थी का विरोध किया. दोनों का विचार था कि हिन्दू तथा मुस्लिम पृथक राष्ट्रियताएँ हैं अतः दोनों एक दूसरे से घृणा करने के साथ, एक दूसरे के विरुद्ध भय का वातावरण फैलाते थे तथा अपनी राजनीति से एक दूसरे को मजबूत करते थे.

### ➤ नेहरु रिपोर्ट तथा उसका राजनीतिक प्रभाव:-

जब भारत के लगभग सभी दलों ने साइमन कमीशन का बहिष्कार करने का निर्णय लिया तो भारत में एक बार फिर हिन्दू मुस्लिम एकता के आसार नज़र आने लगे. जिन्ना ने एक समझौता प्रस्ताव पेश किया. उनका विचार था कि पृथक निर्वाचन क्षेत्र की मुस्लिम मांगों को अल्पसंख्यकों के लिए आरक्षित सीटों वाले संयुक्त निर्वाचन क्षेत्र में बदला जा सकता है यदि केन्द्रीय विधानसभा में 1/3 मुस्लिम प्रतिनिधित्व, पंजाब तथा बंगाल में जनसंख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व तथा तीन नए मुस्लिम बहुसंख्यक प्रान्तों को मान्यता दे दी जाये. यह पेशकश कांग्रेस ने मानने से इंकार कर दिया क्योंकि पंजाब और महाराष्ट्र के हिन्दू साम्प्रदायिकता के उभार ने उसे ऐसा करने से रोक दिया. 1928 में प्रस्तुत नेहरु रिपोर्ट में हिन्दू महासभा के विचारों को काफी रियायत दी गयी. इसमें यह प्रस्तावित किया गया कि सभी क्षेत्रों में केवल संयुक्त निर्वाचन क्षेत्र होंगे, तथा सीटों का आरक्षण केवल केन्द्रीय विधानमंडल तथा मुस्लिम अल्पसंख्यक प्रान्तों में होगा, सिंध को बम्बई से पृथक करने का निर्णय भारत को डोमिनियन स्टेटस मिलने के बाद किया जाएगा. देश का राजनीतिक ढांचा एकात्मक होगा तथा अवशेष शक्तियां केंद्र के पास रहेंगी. एकता बनाये रखने के अंतिम प्रयास में जिन्ना ने अपील की कि सिंध को अलग प्रान्त का दर्जा देने, अवशेष शक्तियां प्रान्तों के पास, केन्द्रीय विधानमंडल में 1/3 मुस्लिम प्रतिनिधित्व तथा पंजाब/बंगाल में अरक्षित सीटों की मांगों को मान लिया जाये. किन्तु सर्वदलीय कांग्रेस ने जिन्ना के इस अनुरोध को मानने से इंकार कर दिया.



जिन्ना ने इसे हिन्दू बहुसंख्यकवाद की तानाशाही करार देते हुए हिन्दू-मुस्लिम के अलग-अलग रास्ते का नारा दिया जिसके फलस्वरूप सभी मुस्लिम सांप्रदायिक गुट इकट्ठे हो गये तथा उन्होंने एक प्रपत्र तैयार किया जिसे जिन्ना का "१४ सूत्री कार्यक्रम" का नाम दिया गया. जो बाद में एक अलग पाकिस्तान के मांग के रूप में सामने आया.

**प्रसिद्ध इतिहासकार बिपिन चन्द्र के अनुसार " इन सभी सांप्रदायिक घटनाओं के बावजूद 1930 तक साम्प्रदायिकता सारे भारत में पूरी तरह व्याप्त नहीं थी. सांप्रदायिक झगड़े शहरों तक सीमित थे तथा हिन्दू-हिन्दू सांप्रदायिक नेताओं को कोई व्यापक जन-समर्थन भी प्राप्त नहीं था. उभरते हुए मजदूर आन्दोलन पूरी तरह धर्मनिरपेक्ष थे साम्प्रदायिकता में कट्टरपंथी चरण केवल 1937 के बाद आरम्भ हुआ."**

### **❖ नेहरू रिपोर्ट से देश के विभाजन तक:-**

नेहरू रिपोर्ट के प्रावधानों से असंतुष्ट होकर जिन्ना ने प्रस्तुत 14 सूत्री कार्यक्रम को जब कांग्रेस सहित सर्वदलीय दल के बैठक में नकार दिया गया. इससे भारत में सांप्रदायिक विवाद और गहरा गया. मुस्लिम लीग और आक्रामक होकर कांग्रेस पर मुस्लिम विरोधी होने का आरोप लगाने लगी और मुस्लिमों को धार्मिक आधार पर गोलबंद करने लगी. जिन्ना जैसे राष्ट्रवादी मुस्लिम भी जो पहले कांग्रेस की नीतियों के समर्थक थे, इस रिपोर्ट के बाद कांग्रेस के घोर विरोधी बन गये. नेहरू रिपोर्ट ने जिन्ना के अतिरिक्त अन्य उदारवादी मुसलमानों को भी निराश कर दिया और आम मुसलमानों में हिन्दू बहुमतवाद का भय छा गया. 1928 में शौकत अली ने बड़ी ही निराशा के साथ कहा कि "कांग्रेस हिन्दू महासभा की एक दुमछल्ला बन चुकी है." (हसन, 1985 : 210 द्वारा उद्धृत)

नेहरू रिपोर्ट के आने और जिन्ना के 14 सूत्री कार्यक्रम के खारिज होने के पहले तक, अर्थात् 1930 के दशक के अंत तक भी मुसलमानों की कोई निश्चित राजनितिक संस्था नहीं थी. मुस्लिम राजनीति में आरम्भ से ही उसमें स्तर सम्बन्धी भेद और वैचारिक विवाद रहे. लेकिन इसके बावजूद भी जैसा कि आर.जे. मूर (1888) ने दिखाया है, अंग्रेजी राज्य के सहभागिता के रूप में 1920 और 1930 के दशकों के दौरान राजनीतिक दृष्टि से मुसलमानों ने बहुत कुछ पाया था. अलग निर्वाचनमंडल का सिद्धांत अब भारतीय संविधान में पक्के रूप में शामिल हो चुका था. लेकिन इसके बावजूद भी कांग्रेस कभी भी पुरे मन से पृथक निर्वाचन की व्यवस्था को स्वीकार नहीं कर पाई थी तथा पृथक निर्वाचन की पद्धति के प्रति वह लगातार नकारात्मक प्रचार करती रही. जिससे अल्पसंख्यकों विशेषकर मुसलमानों में कांग्रेस के प्रति संदेह का वातावरण पैदा हुआ और वे अपने को कांग्रेस के राष्ट्रीय कार्यक्रमों से पृथक करने लगे. इसी प्रकार के अलगाव और अविश्वास के इसी राजनीतिक सन्दर्भ में धीरे-धीरे एक और विचार पनपा और यह विचार मुस्लिम राष्ट्रीयता का था. 1930 में मुस्लिम लीग के अध्यक्ष के रूप में सर मुहम्मद इकबाल ने भारत के अन्दर ही, चार प्रान्तों (पंजाब, पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त, सिंध और बलूचिस्तान)को मिलाकर एक केंद्रीकृत क्षेत्र के गठन का प्रस्ताव रखा था. जिसे कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के छात्र रहमत अली ने 1931 में इन चारों मुस्लिम प्रान्तों और कश्मीर को मिलाकर अस्पष्ट रूप से "पाकिस्तान" बनाने की बात की. 1932 में ब्रिटिश सरकार के शह पर चौधरी मोहम्मद अली ने ब्रिटेन में बैठकर पाकिस्तान का नक्शा बनाया तथा इसे भारत भेजा. **फाजली हुसैन के अनुसार** जिन लोगों ने 1930 के प्रारंभिक वर्षों में पाकिस्तान के विचारों को हवा दी, वे सभी बुद्धिजीवी लन्दन में ब्रिटिश खुफिया संस्थाओं द्वारा पोषित किये जा रहे थे." इसी दौरान जिन्ना ने मुसलमानों के भय और असंतोष की इसी सामूहिक भावना को राजनीतिक वाणी दी. लन्दन में स्वघोषित निर्वासन का काल व्यतीत करने के बाद मुस्लिम लीग का नेतृत्व संभालने के लिए 1934 में भारत लौटे जिन्ना ने हालाँकि 1934 से लेकर 1937 के

बीच भी मुस्लिम लीग और कांग्रेस के बीच सहयोग का माहौल बनाने के लिए प्रयासरत थे , ताकि 1935 के कानून में निरुपित संघीय संवैधानिक ढांचे में संशोधन कराया जाये.1935 में राजेंद्र प्रसाद से हुई चर्चा में जिन्ना के दृष्टिकोण की कुछ प्रवृत्तियाँ स्पष्ट हुईं जैसे-(1) केवल मुस्लिम लीग ही मुसलमानों का एक मात्र राजनीतिक साधन है, (2) कांग्रेस का यह दावा गलत है कि यह भारत के सभी लोगों-चाहे वे किसी भी जाति,नस्ल या संस्कृति के हों का प्रतिनिधित्व करती है, तथा (3) कांग्रेस एक हिन्दू संस्था है. लेकिन 1937 के चुनावों में कांग्रेस के हाथों बुरी तरह पराजित होने के बाद मुस्लिम लीग और जिन्ना की स्थिति जहाँ कमजोर हुई वही कांग्रेस राजनीतिक अहंकार से भर गयी और इसने जिन्ना व लीग को ज्यादा महत्व देना बंद कर दिया. इस परिदृश्य में जिन्ना जो पहले, धर्मनिरपेक्ष थे, और कांग्रेस- लीग सहयोग की बात किया करते थे तथा उसके लिए प्रयासरत भी रहते थे, अब खुलकर धार्मिक राजनीति का सहारा लेने लगे. 1934 में रहमत अली द्वारा प्रस्तुत पाकिस्तान की अवधारणा को जिन्ना के नेतृत्व में हुए मुस्लिम लीग नेकरांची की बैठक में इसे स्वीकार कर लिया गया. इस बैठक के दौरान "हिन्दू- और मुस्लिमों को दो अलग-अलग राष्ट्र मानते हुए उनके लिए अलग-अलग राजनीतिक आत्मनिर्णय के आवश्यकता पर बल दिया.(मूर, 1988 : 113)

### ➤ 1937 का चुनाव और साम्प्रदायिकता के प्रश्न:-

1937 के प्रांतीय चुनाव के बाद उभरे राजनीतिक वातावरण में साम्प्रदायिकता के प्रश्न ने विकराल रूप धारण करना शुरू कर दिया. इन चुनावों में कांग्रेस को भारी सफलता मिली. इन चुनावों में हुए 1585 असेम्बली की सीटों में कांग्रेस को 711 पर विजय प्राप्त हुई ग्यारह में से पांच प्रान्तों (मद्रास, बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रान्त और संयुक्त प्रान्त) में कांग्रेस को पूर्ण बहुमत मिला बम्बई में भी उसे लगभग बहुमत की प्राप्ति हुई मुस्लिम चुनाव क्षेत्रों में कांग्रेस के बहुत मामूली प्रदर्शन (482 अरक्षित सीटों में कांग्रेस 58 पर लड़ी और 26 पर विजयी रही थी) के बावजूद उसे इस बात से संतुष्टि मिली कि मुस्लिम लीग भी मुसलमानों के एकमात्र प्रतिनिधित्व का दावा सिद्ध करने में असफल रही.पच्छिमोत्तर सीमाप्रांत में लीग एक भी स्थान पाने में सफल नहीं हो पाई और वह पंजाब के 84 आरक्षित चुनाव क्षेत्रों में से केवल 2 और सिंध के 33 में से केवल तीन स्थान पर ही जीत सकी. मुस्लिम लीग 483 पृथक निर्वाचन क्षेत्रों में से केवल 109 पर विजयी रही. संयुक्त प्रान्त में मुस्लिम लीग ने साथ मिलकर सरकार बनाने के कांग्रेस के प्रस्ताव को ठुकरा दिया लेकिन इसके बावजूद संयुक्त प्रान्त में कांग्रेस को अन्य अल्पसंख्यक दलों जैसे देवबंद के उलेमा गुट तथा उत्तरी भारत के अहरार पार्टी का समर्थन प्राप्त था. चुनावों में जीत के बाद कांग्रेस ने अंग्रेजी हुकूमत के साथ कुछ समझौतों, जिनमें सरकारों के कामकाज में गवर्नर द्वारा हस्तक्षेप नहीं करने के वचन के साथ प्रान्तों में अपनी सरकार बनाई तथा कार्य करना शुरू किया. लेकिन 27 महीनो के कांग्रेस के प्रान्तों में शासन के दौरान लीग कांग्रेस के विरुद्ध प्रचार करती रही.1937 के मुस्लिम लीग के लखनऊ अधिवेशन में जिन्ना ने कांग्रेस पर आरोप लगाया कि वह हिंदूवादी नीतियों का अनुसरण करके मुस्लिमों को अलग-थलग कर रही है. जिन्ना ने लीग के पटना अधिवेशन में भी कांग्रेस पर कमोवेश यही आरोप दुहराए. जिन्ना के अनुसार जब से कांग्रेस ने प्रान्तों में सरकारें बनाई है उसने अपने शब्दों, कर्मों तथा कार्यक्रमों से सिद्ध कर दिया है कि मुसलमानों को इससे कोई न्याय नहीं मिल सकता. साथ ही सभी प्रान्तों में रहने वाले मुसलमानों को जिन्ना ने विश्वास दिलाया कि जनकल्याण तथा राजनीतिक सुधारों के लिए वे लीग के सहयोग पर भरोसा कर सकते हैं. साथ जिन्ना ने भरोसा दिलाया कि मुस्लिम समुदाय का भविष्य लीग के हाथों में ही सुरक्षित है तथा एक सुदृढ़ , मजबूत एवं संगठित शक्ति किसी भी खतरे का मुकाबला कर सकती है. जिन्ना ने आगे कहा कि कोई भी

हिन्दू नेता मुस्लिमों के हितों के तरफ ध्यान नहीं देता. कोई भी सम्मानित समझौता केवल बराबरी के लोगों के बीच ही हो सकता है और जब तक दोनों पक्ष एक दुसरे की इज्जत करना तथा एक दूसरे से डरना न सीखे, समझौते का कोई ठोस आधार नहीं बनता.

देश के मुस्लिम समुदाय पर जिन्ना के इस भाषण का दूरगामी प्रभाव पड़ा और मुस्लिम राजनीतिक वर्ग जो भले ही किसी दल से हो, वे जिन्ना को अपना नेता स्वीकार करने लगे. इसका बानगी तब देखने को मिला जब पंजाब और बंगाल के मंत्रिमंडलों ने जिन्ना में अपना विश्वास प्रकट किया. सभी मुस्लिम सदस्यों ने अपना अलग गुट बना लिया और हिन्दू सदस्य अलग-थलग पड़ गये. विधान मंडल का गठन सांप्रदायिक आधार पर होने के कारण, आरोपों तथा प्रत्यारोपों का सिलसिला भी सांप्रदायिक रूप लेने लगा. इस अलगाव की प्रक्रिया को ब्रिटिश सरकार ने भी समर्थन दिया क्योंकि वह भी कांग्रेस के बढ़ते हुए राजनीतिक प्रभाव से चिंतित थी सरकार ने लीग समर्थक नीति अपनाई और उसे मुसलमानों की एकमात्र प्रतिनिधि संस्था मन लिया. ब्रिटिश सरकार ने लीग के प्रति तुष्टिकरण की नीति अपनाते हुए उसे यह भरोसा भी दिलाया कि संविधान में कोई भी सुधार मुसलमानों की सहमति के बिना नहीं किया जायेगा. अक्टूबर 1938 में जिन्ना ने कांग्रेस पर आरोप लगाया कि जब से इसने 6 प्रान्तों में बहुमत प्राप्त किया है इसने लीग के प्रति निर्दयी, क्रूर और शत्रुतापूर्ण दृष्टिकोण अपनाया है तथा यह सांप्रदायिक दंगे रोकने में असफल रही है, बकरीद तथा गौ-हत्या पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है, सार्वजनिक स्थलों पर वन्देमातरम गाना तथा उर्दू की कीमत पर देवनागरी लिपि में हिंदी और हिन्दुस्तानी को प्रोत्साहित कर रही है. जिन्ना ने ब्रिटिश सरकार पर भी मुस्लिमों के शोषण की प्रक्रिया में कांग्रेस के साथ मिले होने का आरोप लगाया. 1938 में कांग्रेस अध्यक्ष सुभाष चन्द्र बोस के साथ हुए बैठक में भी जिन्ना ने इस बात पर जोड़ दिया कि मुस्लिम लीग को मुसलमानों का एकमात्र प्रतिनिधि मन लिया जाये. वे भारत में कांग्रेस के बहुमत वाले शासन का अर्थ हिन्दू शासन से लगाते थे, जिसमें मुसलमान दोयम दर्जे के नागरिक रह जायेगे. 1939 में पाकिस्तान के नारे लगा रहे कमिन्स के कुछ विद्यार्थियों के सामने जिन्ना ने माना कि न चाहते हुए भी मैं अधिकाधिक इस बात से प्रभावित होता जा रहा हूँ कि आप सही हैं.



(१९३७ के चुनावों के बाद देश में व्यापक दंगे हुए)

Source: <http://www.google.co.in/imgres>

**बिपिन चन्द्र के अनुसार** " 1937 के बाद साम्प्रदायिकता ने विकराल रूप धारण करना आरम्भ कर दिया. पिछला सिद्धांत यह था कि भारत में विभिन्न धार्मिक समुदायों के अपने-अपने सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक हितों के बावजूद वे एक राष्ट्र बनाकर रह सकते हैं और यह उद्देश्य एक ही देश में पृथक निर्वाचन क्षेत्रों, सामुदायिक अधिकारों, आरक्षण आदि द्वारा संभव हो सकता है. लेकिन अब एक ही राष्ट्र के अन्दर इकट्ठे रहने का विचार परस्पर समुदायों में घृणा, डर, शत्रुता तथा पृथकतावाद में परिवर्तित होने लगा. हिन्दुओं और मुसलमानों के हित परस्पर विरोधी तथा स्थाई रूप से विवादास्पद घोषित कर दिए गये. ऐसे वातावरण में पाकिस्तान के विचार को मूर्त रूप देना अनिवार्य लगने लगा क्योंकि साम्प्रदायिकता के चरणों में केवल पृथकता का चरण ही पूरा होना रह गया था.

#### ❖ **द्वितीय विश्व युद्ध की शुरुआत और "दो-राष्ट्र" सिद्धांत का प्रस्ताव:-**

1939 में जर्मनी द्वारा पोलैंड पर आक्रमण के साथ ही दुसरे विश्व युद्ध की शुरुआत हो गई. जापान के इसमें शामिल होने के साथ ही जल्द ही इसकी जड़ में एशिया भी आ गया. उस समय अधिकतर प्रान्तों में कांग्रेस की सरकारें थी. ब्रिटिश गवर्नर जनरल ने बिना कांग्रेसी मंत्रिमंडलों से सलाह या विचार विमर्श किये ही भारत को जर्मनी के विरुद्ध युद्ध में शामिल कर लिया. विरोध में सभी प्रान्तों की कांग्रेस सरकारों ने अपना त्यागपत्र दे दिए. कांग्रेस ने युद्ध में ब्रिटिश सरकार को समर्थन करने के लिए यह शर्त रखी कि ब्रिटिश सरकार यह घोषणा करे कि युद्ध के बाद भारत को पूर्ण स्वतंत्रता दे दी जाएगी और देश का प्रशासन चलाने की प्रभावी शक्ति तुरंत भारतीयों को सौंप दी जाएगी. ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस के इन मांगों से निपटने के लिए मुस्लिम लीग के अलगाववादी भावना को उभारना शुरू कर दिया और उसे मुसलमानों का एकमात्र प्रवक्ता मानते हुए यह घोषणा की कि किसी भी समझौते तक पहुंचने से पहले सभी समुदायों की राय अवश्य ली जाएगी

#### ➤ **मुस्लिम लीग का लाहौर प्रस्ताव और पाकिस्तान की अवधारणा को मंजूरी:-**

दुसरे विश्व युद्ध के आरम्भ के साथ ही जब कांग्रेस मंत्रिमंडलों ने सामूहिक रूप से त्यागपत्र दे दिया तो मुस्लिम लीग ने इसे मुक्ति दिवस के रूप में मनाया और अंग्रेजी सरकार के साथ सहयोग की नीति अपनाई. 26 मार्च 1940 का दिन भारतीय इतिहास में एक बहुत ही महत्वपूर्ण दिन है इस दिन मुस्लिम लीग ने अपने लाहौर अधिवेशन में एक प्रस्ताव पारित कर पाकिस्तान के मांग को एक सैद्धांतिक मंजूरी प्रदान की. इस प्रस्ताव में हालाँकि विभाजन या पाकिस्तान का उल्लेख नहीं किया गया था बल्कि केवल अनिश्चित भविष्य में मुस्लिम बहुल प्रान्तों से स्वतंत्र राज्यों के गठन की बात की. दुसरे शब्दों में यह प्रस्ताव भारतीय मुसलमानों के एक अल्पसंख्यक से एक राष्ट्र में रूपांतरण का सूचक था, ताकि भारत के लिए किसी भी भावी संविधानिक व्यवस्था पर उनकी भागीदारी और सहमति के बिना बातचीत न की जा सके. उसके बाद ऐसी किसी भी व्यवस्था में हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच बराबरी की मांग जिन्ना की राजनीति का केन्द्रीय तत्व बन गयी. **(जलाल, 1994 : 58)**

मुस्लिम राष्ट्रीयता की लाहौर घोषणा से लेकर 1947 में एक अलग प्रभुत्वसंपन्न राज्य के वास्तव में साकार होने तक का रास्ता लम्बा और कष्टों से भरा रहा. मुस्लिम राष्ट्र की धारणा केवल जिन्ना की या मुखर बुद्धिजीवियों के एक चयनित समूह की परिकल्पना नहीं थी बल्कि उसे उन हजारों आम मुसलमानों ने वैधता प्रदान की जो करांची, पटना या लाहौर के जुलूसों में शामिल हुए हड़तालों में भाग लिया, प्रदर्शन किये. **(शेखर, 2013: 338)**



मुस्लिमों में अलगाव की यह भावना ऐसे ही नहीं उठी थी बल्कि प्रथम विश्व युद्ध के बाद से हिन्दू साम्प्रदायिकता का उभार, कांग्रेस की अहंकारवादी नीति और भारत के सेक्युलर जमात द्वारा लगातार मुस्लिमों के मांगों की अवहेलना से पैदा हुई थी। जो मुस्लिम 1921 में अपनी धार्मिक पहचान और राष्ट्रीय पहचान में कोई विरोधाभास नहीं पाता था, उन्हीं के लिए उनकी अलग मुस्लिम राष्ट्रीयता की मान्यता 1940 के दशक में समझौतों से परे एक न्यूनतम मांग बन गयी। धीरे-धीरे व्यापक मुस्लिम जनता ने भी इन भावनाओं को अपना लिया। **अचिन विनायक के अनुसार** "जिन दिनों एक उपनिवेशवाद विरोधी अखिल भारतीय राष्ट्रीय पहचान निर्माण की प्रक्रिया में थी, उन दिनों एक अलग मुस्लिम पहचान के इस उदय के लिए कांग्रेसी नेतृत्व वाला राष्ट्रीय आन्दोलन बड़ी सीमा तक जिम्मेदारी से बच नहीं सकता." (विनायक, 1997 : 31)

### ➤ राजगोपालचारी फार्मूला और कांग्रेस-लीग समझौते का आखिरी प्रयास:-

कांग्रेस और लीग के बीच बढ़ते जा रहे विवाद को दूर करने और देश के विभाजन को रोकने के आखिरी प्रयास में वरिष्ठ कांग्रेसी नेता और महात्मा गाँधी के निकट सहयोगी सी. राजगोपालाचारी ने अप्रैल 1944 में एक हल सुझाव कि जिन संलग्न जिलों में मुसलमान पूर्ण बहुमत में हैं उनकी पहचान के लिए युद्ध के बाद एक आयोग बनाया जाये; उन जिलों में वयस्क आबादी का जनमत संग्रह तय करे कि क्या वह पाकिस्तान चाहती है; विभाजन की स्थिति में प्रतिरक्षा और संचार जैसी कुछ बुनियादी सेवाओं के संचालन के लिए एक आपसी समझौता हो; सीमावर्ती जिले दोनों प्रभुता-संपन्न राज्यों में से किसी एक में मिलने का फैसला करे; और इस योजना का क्रियान्वयन सत्ता के पूर्ण हस्तांतरण तक स्थगित रहे। जुलाई 1944 में गाँधी ने जिन्ना के साथ " राजाजी सूत्र" के आधार पर वार्ता का प्रस्ताव रखा जो वास्तव में पाकिस्तान की मांग को स्वीकार करने के समान था। पर जिन्ना इस प्रस्ताव पर सहमत नहीं हुए और सितम्बर 1944 में गाँधी-जिन्ना वार्ता भंग हो गयी। गाँधी की राय में वार्ता परिप्रेक्ष्य सम्बन्धी बुनियादी मतभेदों के कारण भंग हुई जहाँ गाँधी अलगाववाद को परिवार के अन्दर के अलगाव के रूप में देखते थे और इसलिए भागीदारी के कुछ तत्व बनाये रखना चाहते थे, वहीं जिन्ना प्रभुसत्ता के साथ पुरा सम्बन्ध विच्छेद चाहते थे। (सिंह, 1987 : 109-11)

भारत के भावी संविधान सभा पर सहमति बनाने और कांग्रेस- लीग में एक कार्यकारी समझौता कराने के लिए ब्रिटिश गवर्नर जनरल लार्ड बेवल ने शिमला में एक कांफ्रेंस बुलाई। इस कांफ्रेंस में कांग्रेस- लीग के विवादों के मध्य एक बीच का रास्ता निकालने की कोशिश की गयी लेकिन यह कांफ्रेंस मुस्लिम लीग के अड़ियल रुख के कारण असफल हो गया। इस सम्मलेन में ब्रिटिश सरकार ने भारत में एक भारतीय कार्यपालिका बनाने के लिए कांग्रेस और लीग के मध्य एक सहमति बनाने का प्रयास किया गया, इस कार्यपालिका में अंग्रेजी सरकार, कांग्रेस और लीग के साथ-साथ अनुसूचित जातियों-जनजातियों को भी स्थान दिए जाने थे; लेकिन जिन्ना ने इसमें हिन्दुओं और मुसलमानों के लिए बराबर-बराबर सीटों की मांग के साथ-साथ बनने वाले मंत्रिमंडल में सभी मुस्लिम सदस्यों की नियुक्ति का अधिकार लीग को देने की मांग की, जो कांग्रेस को स्वीकार नहीं था; अतः यह कांफ्रेंस असफल हो गया



आयशा जलाल का तर्क है कि 1940 तथा 1946 में कैबिनेट मिशन के आगमन के बीच पाकिस्तान की मांग को कभी या तो जिन्ना या मुस्लिम लीग ने कभी स्पष्ट नहीं किया।(जलाल 1985 :58) लेकिन इस मांग की अस्पष्टता ने 1940 के दशक के दौरान उसे मुस्लिम जनता की लामबंदी के उस अभियान का एक उत्तम साधन बना दिया, जिसका प्रमुख लक्ष्य वर्ग और क्षेत्र की सीमाओं को तोड़कर एक मुस्लिम राष्ट्रीय पहचान कायम करना था। इस काल में मुस्लिम राजनीति अपने परंपरागत आधार अर्थात् भूस्वामी कुलीनों के अलावा मुस्लिम जनता के एक भाग का समर्थन भी पाने लगी थी, खासकर पेशेवर लोगों और व्यापारी समूहों का, जिनके लिए एक अलग पाकिस्तान का अर्थ हिन्दुओं से प्रतियोगिता की समाप्ति थी। इसके अलावे उसे अग्रणी उल्मा, पीरों और मौलवियों का भी राजनीतिक समर्थन मिला, जिन्होंने इस अभियान को एक धार्मिक वैधता प्रदान की।(हसन 1997 :70-77, 91-99)

### ➤ 1946 के चुनाव और सांप्रदायिक विभाजन:-



(पाकिस्तान से भारत को विस्थापित होते हिन्दू)

Source: <http://www.google.co.in/imgres>

1946 में संविधान सभा के लिए हुए चुनाव में जहाँ कांग्रेस एक धर्मनिरपेक्ष एजेंडा के साथ चुनाव मैदान में उतरी, वही लीग यह चुनाव अपने पाकिस्तान की मांग पर मुस्लिमों के मध्य एक जनमत संग्रह के रूप में लड़ी। इस चुनाव के परिणामों से यह बात साफ हो गयी कि मुस्लिम लीग इस देश में मुसलमानों की एकमात्र प्रतिनिधित्व करने के दावे तक पहुँच चुकी है मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में इसने लगभग 90% से ज्यादा ही मत पाए तथा कुल मुस्लिम मतों का लगभग 80% मत मुस्लिम लीग को मिले। पंजाब और बंगाल में मुस्लिमों के प्रतिनिधित्व का दावा करने वाले अन्य राजनीतिक दल या समूह हाशिये पर चले गये। मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में या तो मुस्लिम लीग को बहुमत प्राप्त हुआ या वह वहाँ सबसे बड़े दल के रूप में उभरी इन चुनावों की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता थी मुस्लिम साम्प्रदायिकता के आधार पर वोट डाले जाना। दूसरी तरफ इन चुनावों में हिन्दुओं के हितों की बात करने वाली हिन्दू महासभा का पूर्णरूप से सफाया हो गया। इस चुनाव परिणाम के आधार पर लीग ने वस्तुतः अपनी पाकिस्तान की मांग पर विजय पा ली। लीग विधायक दल के बैठक को संबोधित करते हुए जिन्ना ने अलग पाकिस्तान के सवाल पर किसी भी प्रकार के समझौते से इंकार कर दिया और साथ ही ब्रिटिश सरकार को चेतावनी भी दी कि अगर ब्रिटिश सरकार ने मुस्लिम हितों को नज़रअंदाज करते हुए कांग्रेस के साथ किसी प्रकार के समझौते की कोशिश की तो उसके गंभीर परिणाम होंगे। अपनी पाकिस्तान की मांग को बल प्रदान करने के लिए मुस्लिम

लीग ने 16 अगस्त 1946 को "सीधी कार्यवाही" की घोषणा की जिसके परिणाम स्वरूप देश में भीषण दंगे हुए देश में एकप्रकार का अराजकता की स्थिति पैदा हो गयी. दंगों की लहर आने वाले समय में बिहार, बंगाल, संयुक्त प्रान्त, दिल्ली और पंजाब तक फैल फैल गयी, जिससे देश में धार्मिक विभाजन की खाई और चौड़ी हो गयी. विभिन्न धार्मिक समूहों के मध्य अविश्वास की भावना इस दौरान अपने चरम पर थी. चुनाव के बाद हालाँकि लीग कुछ शर्तों के आधार पर नेहरू के नेतृत्व वाली सरकार में तो शामिल हुई थी लेकिन उसका उद्देश्य सरकार के साथ किसी प्रकार का सहयोग करना नहीं होकर सरकार के कार्यों में बाधा उत्पन्न करना था. इस प्रकार 9 दिसम्बर 1946 को हुई संविधानसभा के प्रथम बैठक का लीग ने बहिष्कार किया और देश में मुस्लिमों के मध्य पाकिस्तान की आवाज़ को बुलंद करने की अपील की, जिससे देश में भीषण दंगे हुए. जीवन भर संवैधानिक राजनीति के विश्वास करने वाले कायदे-आज़म जिन्ना के लिए अंततः संवैधानिक तरीकों को अलविदा कहने और अपने मुस्लिम राष्ट्र को आन्दोलन की राजनीति के लिए तैयार करने का वक़्त आ चुका था. (वोल्फर्ट 2000 : 344 द्वारा उद्धृत) इस प्रकार लगातार होने वाले सांप्रदायिक दंगों के दौर में अगस्त 1947 में भारत का धार्मिक विभाजन राजनीतिक विभाजन के रूप में परिवर्तित हो गया और धार्मिक आधार पर एक नए राष्ट्र पाकिस्तान का उदय हुआ.



(नोआखली में दंगों के बाद शांति मार्च करते गाँधी)

Source: <http://www.google.co.in/imgres>

#### ❖ निष्कर्ष:-

भारतीय समाज शुरू से ही एक धार्मिक रूप से बहुल समाज रहा है लेकिन यहाँ की धार्मिक बहुलता सदा से ही इसकी मजबूती का आधार रही है. लेकिन अंग्रेजों के भारत पर अधिकार करने के साथ ही यहाँ की धार्मिक बहुलता एक अलग ही प्रकार के शकल में गढ़ने लगी. जो भारतीय समाज अभी तक "पहले आप" अर्थात् अपने से पहले दुसरो के भलाई करने में विश्वास करता था; अब वह एक भिन्न तरीके से व्यवहार करते हुए "पहले मैं" की पद्धति में विश्वास करने लगा. पश्चिमी समाज से अलग भारतीय समाज शुरू से ही धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से एक एकीकृत समाज रहा था लेकिन ब्रिटिश उपनिवेशवादी नीतियों और कुछ भारतीय नेताओं और आर्थिक वर्गों के हितों के कारण यह धार्मिक-सामाजिक तानाबाना विखंडित हो गया. भारत में साम्प्रदायिकता

के उदय और विकास का कारण केवल धार्मिक मात्र नहीं था; बल्कि यह दोनों समुदायों के उच्च वर्गों के राजनितिक व आर्थिक स्वार्थों का परिणाम था। जहाँ अंग्रेजों के लिए अपनी सत्ता को कायम रखने के लिए भारत के सामाजिक-धार्मिक एकता को तोड़ना अनिवार्य था; वहीं हिन्दुओं और मुस्लिमों के मध्य और संपन्न वर्गों को अपने लिए राजनितिक और आर्थिक अवसरों को तलाशने और एक दुसरे की प्रतिस्पर्धा का सामना करने के लिए अपने धार्मिक पहचान को आधार बनाने की जरूरत महशुस हुई इसने भारत में धार्मिक विभाजन और साम्प्रदायिकता के जहर को बढ़ाने में ईंधन का कार्य किया। भारत में साम्प्रदायिकता के उदय का शिकार सबसे ज्यादा आम आदमी बना जबकि इसका लाभ ज्यादातर दोनों समुदायों के आर्थिक-राजनीतिक संभ्रांतो ने उठाया। इस प्रकार ब्रिटिश भारत में साम्प्रदायिकता का उदय आध्यात्मिक या धार्मिक न होकर राजनितिक था, जिसका परिणाम भी देश के राजनीतिक विभाजन के रूप में सामने आया। आज भी भारत में अनेक धार्मिक समुदायों के लोग रहते हैं और वे एक दुसरे के पर्व-त्योहारों, उत्सवों में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेते हैं, वहीं धार्मिक आधार पर बने पाकिस्तान का जहाँ 1971 में एक और विभाजन हो गया है, इससे दो-राष्ट्र सिद्धांत के इस आधार का खंडन हो गया कि एक धार्मिक समुदाय के हितों की रक्षा उसी धर्म के आधार पर निर्मित राष्ट्र ही कर सकता है क्योंकि उस राष्ट्र में धर्म विशेष के अनुयायियों के मध्य कोई भेदभाव नहीं किया जाता।

#### ❖ सन्दर्भ सूची-

1. बंदोपाध्याय, शेखर.(२००४). पलासी से विभाजन तक. ब्लैकस्वान प्रकाशन.
2. चन्द्र, बिपिन.(2000). भारतीय स्वतंत्रता संग्राम. पेंग्युन, यु.के.
3. देसाई, ए.ऑर.(2005). भारतीय राष्ट्रवाद का सामाजिक पृष्ठभूमि. पॉपुलर प्रकाशन.
4. दत्त, ऑर.पी.(1955). आज का भारत और कल.लॉरेंस & विशार्ट.
5. बोस, एन.एस.(1965). भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन-एक परिचय. फर्म के.एल.
6. सरकार, सुमित.(1984). आधुनिक भारत. मैकमिलन इंडिया लिमिटेड.
7. चंद, तारा.(1972). भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास. प्रकाशन विभाग.सूचना प्रसारण मंत्रालय.
8. Syed Ahmad Khan, The Present State of Indian Politics.
9. नंदा, बी.ऑर.(1980). आधुनिक भारतीय इतिहास पर लेख. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, यु.एस.ए.
10. सावरकर, वी.डी.(1969). हिंदुत्व; हिन्दू कौन?. बॉम्बे: वीर सावरकर प्रकाशन.
11. स्मिथ, वी.सी.(1946). भारत में आधुनिक इस्लाम. अशरफ.
12. Vanaik, Achin.(1997). The Furies of Indian Communalism: Religion, Modernity and Secularization.
13. Ian Talbot, Provincial Politics and The Pakistan Movement.
14. R.C. Majumdar, The Sepoy Mutiny and The Revolt of 1857.
15. Mushirul Hasan, Religion and Politics in India: The Ulama and The Khilafat Movement: Communal and Revivalist Trends in Congress.